उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Ed. E-43

(वाणिज्य का अध्यापन विज्ञान)

Pedagogy of Commerce

विषय सूची

	खण्ड – 01 : वाणिज्य के आधार	
इकाई 1	वाणिज्य की प्रकृति	5–11
इकाई 2	वाणिज्य अधिगम, वाणिज्य शिक्षण और अधिगम का मनोविज्ञान, वाणिज्य शिक्षण रचनावाद और सक्रियतावाद	12–22
इकाई 3	पाठ्यचर्या सुधार, वाणिज्य शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य	23–33
	खण्ड – 02 : वाणिज्य शिक्षण की रणनीतियाँ – I	
इकाई 4	वाणिज्य शिक्षण के सम्प्रत्यय	35–39
इकाई 5	व्याख्यात्मक (एक्सपोजीशन) एवं खोज विधि द्वारा अधिगम	40–44
इकाई 6	वाणिज्य अधिगम में समूह, समूह कार्य और सहकारी या सहयोगात्मक रणनीतियाँ	45–50
	खण्ड– 03 : वाणिज्य शिक्षण की रणनीतियाँ – II	
इकाई 7	वाणिज्य अधिगम में पाठ्य सहगामी एवं अ–औपचारिक उपागम	53–59
इकाई 8	वाणिज्य अधिगम में अभिक्रमित अनुदेशन	60–67
इकाई 9	वाणिज्य शिक्षण में नवीन उपागम	68–74
	खण्ड – 04 : वाणिज्य अधिगम का एवं के लिए आंकलन	
इकाई 10	प्रत्यय शिक्षण के मापनीय रूप में उद्देश्यों को निर्दिष्ट करना, सामान्यीकरण, समस्या समाधान एवं परियोजना विधि	76–95
इकाई 11	उत्पाद और प्रक्रिया परिणाम के आकलन के लिए परीक्षण पदों का निर्माण, नैदानिक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण	96–105
इकाई 12	इकाई परीक्षण का निर्माण, विशिष्टीकरण तालिका (ब्लू प्रिंट), प्रश्नपत्र का निर्माण	107–115
	खण्ड– 05 : वाणिज्य में अधिगम संसाधन	
इकाई 13	अधिगम संसाधन का अर्थ, प्रकार, निर्माण एवं उनका उपयोग	118–126
इकाई 14	पाठ्य पुस्तकें, पत्रिकाएं, हस्तपुस्तिकायें, छात्र कार्य पुस्तिका	127–136
इकाई 15	वाणिज्य प्रयोगशाला, कक्षा एवं कक्षा के बाहर वाणिज्य अधिगम संसाधन	137–143

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Ed. E-43 : Pedagogy of Commerce (वाणिज्य का अध्यापन विज्ञान)

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रोफेसर सत्यकाम **कुलपति,**
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो० पी० के० स्टालिन निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० पी० के० पाण्डेय प्रोफेसर, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० छत्रसाल सिंह प्रोफेसर, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० के० एस० मिश्रा पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० धनन्जय यादव विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० मीनाक्षी सिंह आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ० जी० के० द्विवेदी सह आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ० दिनेश सिंह सह आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ० सुरेन्द्र कुमार सहायक आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ० निगम मौर्या सहायक आचार्य, शिक्षक शिक्षा विभाग, बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुशीनगर
(इकाई– 01 से 15)

सम्पादक

डॉ० सुरेन्द्र कुमार सहायक आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

परिमापक

प्रो० पी० के० पाण्डेय प्रोफेसर, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ० सुरेन्द्र कुमार सहायक आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

2024 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2024

ISBN : 978-93-48270-55-9

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 211013

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार सिंह, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

मुद्रक : चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज– 211002

<u>सन्देश</u>

मेरे प्रिय शिक्षार्थियों,

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज में आपके प्रवेश लेने पर मैं गर्मजोशी से स्वागत करते हुए खुशी का अनुभव कर रहा हूँ। सन् 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश का यह एक मात्र ऐसा विश्वविद्यालय है, जहाँ पर "मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा पद्धति" (O.D.E.) के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती है। अपनी स्थापना के दो दशक के समय में विश्वविद्यालय ने 12 क्षेत्रीय और 1300 से अधिक अध्ययन केन्द्रों की सहायता से उत्तर प्रदेश के उन दूर–दराज इलाकों में भी, जहाँ अन्य शिक्षण संस्थान नहीं पहुँच पाये हैं अपनी व्यापक पहुँच बनायी है। अपने लगभग 125 डिग्री, डिप्लोमा और प्रमाणपत्र कार्यक्रमों के माध्यम से विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश की उच्च शिक्षा के विकास में निरन्तर अपना योगदान दे रहा है।

वर्तमान समय में भारत उच्च शिक्षा के क्षेत्र में **विश्व में दूसरे स्थान** पर है। हमारे देश में अधिकतर विश्वविद्यालय एवं कॉलेज शहरी क्षेत्रों में स्थापित हैं जबकि एक बहुत बड़ी आबादी, जो ग्रामीण एवं दूरदराज इलाके में बसी है, उनको उच्च शिक्षा का अवसर उपलब्ध नहीं है। ऐसे लोगों के लिए यह मुक्त विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा प्राप्त करने का एक सुनहरा माध्यम है। मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा उन लोगों के लिए लाभप्रद अवसर प्रदान करता है जो आर्थिक, सामाजिक और भौगौलिक सीमा/बन्धन के कारण उच्च शिक्षा से वंचित हैं। भारत की शिक्षा व्यवस्था को एक मजबूत आधार प्रदान करने एवं सतत् शिक्षा के विकास के लिए मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा पद्धति ने नवीन मार्ग का सृजन किया है।

हमारे कार्यक्रम कई दृष्टिकोणों से सुविधाजनक हैं क्योकि यह **"छात्र जहाँ हम वहाँ"** जैसे आदर्श एवं लचीली पद्धति पर आधारित है। जहाँ एक ओर परम्परागत शिक्षा के अन्तर्गत समय से कक्षा में उपस्थित होने जैसी बाध्यताएं हैं वही दूसरी ओर मुक्त विश्वविद्यालय में इस बन्धन से आजादी मिलती है और शिक्षार्थी अपनी सुविधानुसार परामर्श कक्षाओं में आकर या मोबाइल काउन्सिलिंग के माध्यम से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। विषय के विविध पक्षों का ज्ञान कराने के लिए विद्वान विषय–विशेषज्ञों द्वारा दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के आधार पर पाठ्य सामग्री तैयार करायी जाती है जो विविध विद्वानों के ज्ञान और कौशल का निचोड़ है। इस प्रकार यहाँ पर **"कोई भी, कहीं भी और किसी भी समय"** अध्ययन कर सकता है अर्थात् **"3A (Any One, Any Where and Any Time)"** मुक्त और दूरस्थ शिक्षा पद्धति के विकास का मूल दर्शन है। शिक्षार्थियों के शिक्षा के स्तर में गुणोत्तर वृद्धि के लिए आई.सी.टी. आधारित कार्यक्रमों की शुरूआत की गई है तथा शिक्षा में नवीन तकनीक को जोड़ने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम मुक्त विश्वविद्यालय उठा चुका है। शिक्षा को और सरल तथा रोचक विधि से आप तक पहुँचाने एवं समझाने के लिए हम नित नवीन सूचना तकनीकियों का प्रयोग कर रहे हैं।

अन्त में मुझे यह विश्वास है कि हमारे विश्वविद्यालय से शिक्षार्थी के रूप में जुड़कर आप अपने ज्ञान और कौशल में वृद्धि करेंगे और अपने जीवन में सफलता की ऊंचाइयों को प्राप्त करेंगे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उच्च गुणवत्ता के साथ मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा क्षेत्र में यह विश्वविद्यालय देश में एक आदर्श बनकर उभरेगा।

आपकी सफलता की कामनाओं के साथ

आपका

कुलपति

खण्ड 01 : वाणिज्य के आधार

खण्ड परिचय

इस खण्ड के अन्तर्गत हम वाणिज्य की प्रकृति, वाणिज्य अधिगम का मनोविज्ञान, वाणिज्य अधिगम की मनोवैज्ञानिक विधियाँ, वाणिज्य शिक्षण का मनोविज्ञान, शिक्षण की प्रकृति, वाणिज्य शिक्षण की प्रकृति, रचनावाद एवं सक्रियतावाद का अध्ययन करेंगे। इसी खण्ड में हम पाठ्यचर्या सुधार के अन्तर्गत–पाठ्यक्रम के उद्देश्य, प्रचलित पाठ्यक्रम के दोष, पाठ्यक्रम में सुधार के लिए सुझाव एवं वाणिज्य शिक्षण के उद्देश्य पर चर्चा करेंगे। इस खण्ड को कुल तीन इकाईयों में बांटा गया है जिसका विवरण निम्नवत है–

इकाई– **1** : इस इकाई में वाणिज्य की प्रकृति के अन्तर्गत वाणिज्य के अर्थ, परिभाषा, अंग, विशेषता एवं महत्व पर चर्चा की गई है।

इकाई– **2** : इस इकाई के अन्तर्गत वाणिज्य अधिगम, वाणिज्य अधिगम का मनोविज्ञान, वाणिज्य शिक्षण, रचनावाद तथा सक्रियतावाद पर विस्तृत चर्चा की गयी है।

इकाई– **3** : इस इकाई में पाठ्यचर्या सुधार, वाणिज्य शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य के अन्तर्गत उद्देश्य का अर्थ, लक्ष्य तथा उद्देश्य में अन्तर, वाणिज्य शिक्षण के लक्ष्य, वाणिज्य शिक्षण के उद्देश्य, ब्लूम के अनुसार शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण, वाणिज्य शिक्षण के उद्देश्यों के अनुरूप कार्यात्मक क्रियाओं पर विस्तृत चर्चा की गयी है।

इकाई 01 : वाणिज्य की प्रकृति

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 वाणिज्य की प्रकृति

1.3.1 वाणिज्य का अर्थ

1.3.2 वाणिज्य की परिभाषा

1.3.3 वाणिज्य के क्षेत्र

1.3.4 वाणिज्य का महत्व

1.3.5 वाणिज्य की विशेषता

1.4 सारांश

1.5 अभ्यास के प्रश्न

1.6 चर्चा के बिन्दु

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें/संदर्भ

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य की बढ़ती आवश्यकताओं और उत्पादन के विशिष्टीकरण के फलस्वरूप व्यापार का उदय हुआ। व्यापार के उदय ने मानव सभ्यता के इतिहास में जितने परिवर्तन किये हैं उतना कोई अन्य नहीं कर पाया है। वाणिज्य के बिना मानव सभ्यता का इतिहास नहीं लिखा जा सकता। राष्ट्रों के संदर्भ में वाणिज्य का विशेष महत्व है। राष्ट्रों की समृद्धि और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में व्यापार का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। यही कारण है कि सभी राष्ट्र व्यापार को अत्यन्त महत्व देते हैं। व्यापार को बढ़ावा देने के लिए यूरोपीय राष्ट्रों यथा–ग्रेट ब्रिटेन, इटली, फ्रांस, डच, जापान आदि ने विश्वभर में अपनी औपनिवेशिक कालोनिया बनाई। व्यापार पर एकाधिकार और अत्यधिक लाभ कमाने की लालसा के फलस्वरूप ही दो विश्व युद्ध हो चुके हैं। अपना देश भारत इसी व्यापार के कारण ही लगभग 150 वर्षों तक अंग्रेजों का गुलाम रहा। वस्तुतः वाणिज्य के विकास के फलस्वरूप राष्ट्र में न सिर्फ समृद्धि आती है अपितु नागरिकों के जीवन स्तर में भी सुधार आता है। इसका परिणाम यह होता है कि उस राष्ट्र की धाक सम्पूर्ण विश्व में बढ़ती है। वर्तमान समय में उसी राष्ट्र को शक्तिशाली माना जाता है जो आर्थिक रूप से सशक्त होता है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, जापान, जर्मनी आदि राष्ट्रों के विश्व की राजनीति पर दबदवे का कारण उनकी आर्थिक ताकत ही है। वस्तुतः कल्याणकारी राष्ट्र की अवधारणा के बावजूद सरकारों ने आर्थिक नीतियों एवं व्यापार को अपने शासन का प्रमुख हथियार बनाया है। विश्व के समस्त राष्ट्र विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में अग्रिम पंक्ति में सम्मिलित होना चाहते हैं। यही कारण है की विश्वभर में आर्थिक विकास की होड़ लगी हुई है। यह व्यापार के जरिये ही संभव है। मुक्त व्यापार समझौते जी–20 समूह, विश्व व्यापार संगठन की स्थापना, द्विपक्षीय व्यापार समझौते आदि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। किसी भी देश के उत्थान एवं अवनति में वाणिज्या व्यापार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वस्तुतः अपनी आजीविका कमाने में संलग्न व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के प्रयासों को व्यवसाय कहते हैं। मानव जीवन को समृद्ध एवं सुखद बनाने में व्यवसायिक गतिविधियों का सबसे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मानव की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादों का निर्माण एवं युक्तियुक्त ढ़ग से वितरण व्यवसाय की प्रमुख विशेषता है। ऐसे में मानव जीवन को समृद्ध बनाने वाले विषय का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। किसी भी विषय का सांगोपांग अध्ययन करने से पूर्व उसकी प्रकृति को जानना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस इकाई में हम वाणिज्य की प्रकृति के विषय में अध्ययन करेंगे।

1.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. वाणिज्य का अर्थ बता सकेगें।
2. वाणिज्य को परिभाषित कर सकेंगे।
3. वाणिज्य की विशेषता बता सकेंगे।
4. वाणिज्य के क्षेत्रों की विवेचना कर सकेंगे।
5. वाणिज्य का महत्व बता सकेंगे।
6. वाणिज्य के प्रकृति की विवेचना कर सकेंगे।

1.3 वाणिज्य की प्रकृति

वाणिज्य की प्रकृति को समझने हेतु सबसे पहले वाणिज्य की अवधारणा को समझना आवश्यक है। उद्योग का सम्बन्ध वस्तुओं के उत्पादन से होता है जबकि वाणिज्य इन वस्तुओं को उन उपभोक्ताओं तक पहुँचाता है जिनको इसकी आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो वाणिज्य का सम्बन्ध मुख्यतः तैयार माल के विवरण से है। इसके अन्तर्गत वह सभी कार्य आते हैं जो तैयार माल के स्वतंत्र तथा निर्बाध प्रवाह को बनाये रखने हेतु आवश्यक हैं। इसीलिए सामान्यतः वाणिज्य के अन्तर्गत व्यापार तथा व्यापार की सहायक गतिविधियॉ सम्मिलित होती हैं। संक्षेप में कहें तो धनप्राप्ति के उद्देश्य से वस्तुओं का क्रय–विक्रय करना व्यापार है। जबकि इसके साथ बैंकिंग व यातायात आदि को जोड़ दिया जाये तो वह वाणिज्य कहलाता है।

वास्तव में वाणिज्य की प्रकृति को ठीक से समझने हेतु हमें वाणिज्य का अर्थ, परिभाषा, क्षेत्र, महत्व एवं विशेषताओं को जानना होगा।

1.3.1 वाणिज्य का अर्थ

वाणिज्य शब्द अंग्रेजी के Commerce शब्द का हिन्दी रूपांतरण है। Commerce शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Commercium से हुई है जो दो शब्दों Com (Together) एवं merx (merchandise) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ होता है– साथ–साथ व्यापार या क्रय–विक्रय की क्रिया। विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर इसका अर्थ होता है– व्यापारिक या वाणिज्य सम्बन्धी क्रिया।

1. ब्रिटेनिका विश्वकोष के अनुसार वाणिज्य का अर्थ है– बड़े पैमाने पर वस्तुओं का अदान–प्रदान जिसमें परिवहन भी सामिल है।
2. आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार वाणिज्य का अर्थ है– वस्तुओ की क्रय–विक्रय की गतिविधि
   (The business of buying and selling things.)
3. कैम्ब्रिज शब्दकोष के अनुसार वाणिज्य का अर्थ है– वस्तुओं की क्रय और विक्रय से सम्बन्धित कार्य
   (The activities invalued in buying and selling things.)
4. मरियम वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार वाणिज्य का अर्थ है– एक स्थान से दूसरे स्थान पर बड़े पैमाने पर वस्तुओं का आदान–प्रदान या क्रय–विक्रय जिसमे यातायात की व्यवस्था भी सम्मिलित हो, वाणिज्य है।

(The change or buying and selling of commoditi on a large scale involving transporting from place to place.)

प्रायः Business शब्द को वाणिज्य के पर्यावाची के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। आक्सफोर्ड सन्दर्भ शब्दकोष के अनुसार Business व्यक्ति का नियमित पेशा होता है जबकि वाणिज्य में बड़े पैमाने पर क्रय–विक्रय की क्रिया सम्मिलित है। संक्षेप में कहें तो धनप्राप्ति के उद्देश्य से वस्तुओं का क्रय–विक्रय करना व्यापार है। जबकि इसके साथ बैंकिंग और यातायात को जोड़ दिया जाये तो यह वाणिज्य कहलाता है।

1.3.2 वाणिज्य की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई वाणिज्य की परिभाषा निम्नवत् है–

(क) ईविन थॉमस के शब्दो में, ''वाणिज्यिक व्यवसाय सामानों की खरीद व विक्री, वस्तुओं के आदान–प्रदान और तैयार माल के वितरण से सम्बन्धित है।''

(ख) डॉ0 नोएल बैंटन के शब्दों में ''वाणिज्य में विशिष्ट गतिविधियों का एक समूह सामिल होता है जो एक साथ उत्पादन की प्रक्रिया का एक अनिवार्य हिस्सा बनते हैं। यह आपूर्तिकर्ताओं और उपभोक्ताओं के परिवहन, बैंकिंग बीमा और वेयर हाउसिंग जैसे व्यापार और अन्य गतिविधियों के सहायक से जोड़ता है। सबसे महत्वपूर्ण लिंक प्रणाली द्वारा नियांत्रित बाजारों की एक श्रृंखला द्वारा प्रदान किये जाते हैं।''

(ग) स्टीफेन्सन के अनुसार, ''वाणिज्य वस्तुओं के आदान–प्रदान से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत वस्तुओं के क्रय–विक्रय जो कि किसी भी स्तर पर हो या कच्चे माल से निर्मित वस्तु तक की सभी प्रगतियाँ आ जाती हैं, जब तक कि वह उपभोक्ता के हाथों में न पहुँच जाये। इसके अन्तर्गत केवल क्रय–विक्रय का कार्य तथा वस्तुओं का रख–रखाव ही नहीं आता वरन् अनेक सेवाएँ, यथा– पूँजी, बीमा, भण्डारण, परिवहन आदि सभी कुछ आ जाते हैं।''

उपरोक्त परिभाषाएँ इस तथ्य की तरफ इशारा करती हैं कि वाणिज्य आपूर्तिकर्ताओं और उपभोक्ताओं के बीच एक कड़ी है। यह व्यापार को सुगम बनाता है। यह विनिमय के रास्ते में आने वाली विभिन्न बाधाओं को दूर करके सामानों के मुक्त और सुचारू विनिमय को सुनिश्चित करता है। दूसरे शब्दों में वाणिज्य उन सभी गतिविधियों का कुल योग है, जो उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक वस्तुओं एवं सेवाओं के स्थानांतरण से सम्बन्धित है। इस प्रकार इसमें– 1. वस्तुओं एवं सेवाओं का व्यापार तथा 2. व्यापार के लिए सहायक सेवाओं जैसे– बैंकिंग, बीमा, यातायात, कराधान, वेयर हाउसिंग आदि सम्मिलित है। इस प्रकार हम कह सकते है कि वे समस्त गतिविधियाँ जिनसे वाणिज्य को बढ़ावा मिलता है, वाणिज्यशास्त्र के अध्ययन का विषय है। उदाहरणस्वरूप– 1. परिवहन क्षेत्र के विकास के फलस्वरूप व्यापार में तेजी आती है। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही कुशल प्रशासक नये–नये मार्गों के निर्माण, व्यापारिक मागों की खोज (यह विदित हो कि वास्कोडिगामा भारत से व्यापार हेतु समुद्री मार्ग की खोज करते हुए ही भारत पहुंचा था) और व्यापारिक मार्गो की यात्रा को सुरक्षित बनाने का प्रयास किया। वर्तमान सरकारों ने भी सस्ते एवं द्रुतगामी परिवहन को बढ़ावा दिया है। इसमे रेलवे नेटवर्क का विस्तार, हाइवेज का विस्तार, वायुमागों का विस्तार एवं जलपरिवहन को बढ़ावा देना सम्मिलित है। 2. मजबूत और आधुनिक बैंकिंग प्रणाली से व्यापार को काफी बढ़ावा मिलता है। बैंकिंग प्रणाली से उद्योगपतियों और व्यापारियों को सस्ता ऋण मिलता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में साख सृजन हेतु बैंकिंग प्रणाली की प्रमुख भूमिका होती है। अन्तर्देशीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों तरह के व्यापार को बढ़ावा देने में सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः बैंकिंग क्षेत्र का अध्ययन वाणिज्य के विषय क्षेत्र के अंतर्गत आता है। अन्त में हम कह सकते हैं कि वाणिज्य एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है जिसमें व्यापार व व्यापार की सहायक क्रियायें– परिवहन, बैंकिंग, बीमा, संचार के साधन इत्यादि सम्मिलित होते हैं।

1.3.3 वाणिज्य के क्षेत्र

वणिज्य की विषय सामग्री के अन्तर्गत व्यापार तथा इसके सहायक साधन– यातायात, संचार के साधन, बीमा–व्यवस्था एवं बैकिंग आदि को सम्मिलित किया जाता है। इस तरह हम पाते हैं कि वाणिज्य का कार्य मानव जीवन को समृद्ध बनाना है। यह मानव समाज के कल्याण से सम्बन्धित विषय है। अतः वाणिज्य में उन कार्यो का अध्ययन किया जाता है जो मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इन कार्यो का सम्यक अध्ययन ही वाणिज्य के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है जो इस प्रकार है–

(क) **आवश्कताओं की पूर्ति**: प्राचीन काल में मनुष्य की आवश्यकताये कम थी अतः वह स्वयं से अपनी जरूरतें पूरी कर लेता था। धीरे–धीरे विकास के फलस्वरूप मनुष्य की इच्छायें और आवश्यकतायें, दोनों बढ़ी, फलतः मनुष्य अपनी जरूरतें पुरी करने हेतु एक दूसरे से सामानो का आदान–प्रदान करने लगा। इससे व्यापार को बढ़ावा मिला। समय के साथ यह व्यापार स्थानीय स्तर से होते हुए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राट्रीय स्तर तक फैल गया।

(ख) परिवहनः प्रायः वस्तुओं का उत्पादन वहाँ किया जाता है जहाँ इस हेतु संसाधन उपलब्ध होते है जबकि उपभोक्ता दूर–दूर तक फैले होते हैं। तैयार माल को उपभोक्ताओं तक पहुचाने में यातायात के साधनों अर्थात परिवहन व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

(ग) वितरणः उत्पादित माल सुगम तरीके से उसके उपभोक्ता तक पहुचाना वितरण कहलाता है। इसमें कई पक्ष सम्मिलित होते है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उपभोक्ता सामग्री को खरीददार तक यथाशीघ्र और कम खर्च में पहुंचाना महत्वपूर्ण होता है। जिसका वितरण नेटवर्क जितना ज्यादा अच्छा होता है वह उतना ज यादा मुनाफा कमाता है। अतः अन्तर्देशीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों व्यापार में वितरण बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(घ) बैंकिंगः बैंक किसी भी अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं। मजबूत बैंकिंग प्रणाली के बिना मजबूत अर्थव्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यही कारण है कि विश्व के सभी देशो में बैंकिंग प्रणाली को मजबूत और विश्वसनीय बनाने पर बल दिया जाता है। व्यापार हेतु वित्त की आवश्यकता होती है। जमा, ऋण एवं साख सृजन का कार्य भी बैंक ही देखते है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बैंक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

(ड़) भण्डारणः माँग की प्रत्यासा में उत्पादन किया जाता है। भविष्य में माँग उत्पन्न होने की सम्भावना के आधार पर भी उत्पादन किया जाता है। अतः उपभोक्ता तक तैयार सामग्री के पहुचने से पूर्व तैयार माल का भण्डारण वाणिज्य का प्रमुख पक्ष है।

(च) बीमाः माल को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में जोखिम होता है। आग लगने अथवा चोरी हो जाने का खतरा होता है। ऐसे में जोखिम कम करने के लिए बीमा का सहारा लिया जाता है। बीमा कम्पनियाँ सभी प्रकार के नुकसान के लिए कवरेज प्रदान करती है।

(छ) संचारः थोक एवं खुदरा स्तर पर खरीददारों और विक्रेताओं को विभिन्न एजेसियों की सेवाओं की आवश्यकता होती है जो उनके संदेश को एक–दूसरे तक सम्प्रेषित करती हैं। संचार उद्देश्यों के लिए डाकघरों, टेलीफोन, टेलीग्राम कार्यालय आदि की आवश्यकता होती है।

1.3.4 वाणिज्य का महत्व

वणिज्य का महत्व निम्नवत् है–

(क) श्रमिकों के लिए उपयोगी– व्यापार के फलस्वरूप उत्पादन में बृद्धि होती है। उत्पादन बढ़ाने के लिए श्रमिकों की माँग बढ़ती है। इससे श्रमिकों की मजदूरी बढ़ती है। फलतः उनके जीवन स्तर में सुधार आता है। श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार के कारण उनकी उत्पादकता में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप उनकी आय और जीवन स्तर दोनों बढ़ता है। व्यापार से उद्योग धंधो में बृद्धि होती है, फलतः नये रोजगार का सृजन होता है। इससे देश मे बेरोजगारी में कभी आती है। देश में प्रतिव्यक्ति आय और जी.डी.पी. में बृद्धि होती है। अतः देश में खुशहाली आती है।

(ख) मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक– मनुष्य की आवश्यकताओं का इतिहास ही व्यापार का इतिहास है। आज के युग में मनुष्य की आवश्यकताओं का अन्त नहीं होता। वे नित्य–प्रति बढ़ती ही जा रही हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति वाणिज्य के माध्यम से ही होती है। व्यापार के माध्यम से उपभोक्ताओ तक वे वस्तुएँ भी पहुँचती हैं जिनका उत्पादन उनके देश में नही होता है। इससे लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठता है। हमारी आवश्यकता की बहुत सारी वस्तुयें व्यापार के कारण ही उपलब्ध हो पाती हैं। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिक और तकनीकी व्यवसायों में सलाहकार भी उपलब्ध कराये जाते हैं। यह भी व्यापार की ही देन है।

(ग) आर्थिक विकास में उपयोगी– वाणिज्य से विनिमय की प्रक्रिया तेज हुई है। बैंकिंग प्रणाली के विकास से साख, ऋण एवं जमा की स्थिति बेहतर हुई है। अतः उत्पादन एवं व्यापार दोनों में बृद्धि हुई है। फलतः आर्थिक विकास की गति बढ़ी है।

(घ) उपभोक्ताओं को लाभप्रद– व्यापार का सबसे ज्यादा फायदा उपभोक्ताओं को ही होता है। इसके द्वारा उपभोक्ताओं को अन्तर्राष्ट्रीय ब्राण्ड उपलब्ध होते हैं। बाजार में प्रतियोगिता के कारण अच्छे माल

सस्ती कीमत पर उपलब्ध होते हैं। उपभोक्ताओं के समक्ष विकल्प की भरमार होती है। अतः उसे अपनी आवश्यकता की सामग्री का चयन करने में आसानी होती है। बाजार में प्रतियोगिता के कारण उत्पादक निरंतर शोध के पश्चात् नये फीचर वाले सामान सस्ते दरों पर उपलब्ध कराने हेतु लालायित रहते हैं। इस तरह व्यापार के बढ़ने से सबसे ज्यादा फायदा उपभोक्ताओं को ही मिलता है। वितरण की सुविधा के विकास के फलस्वरूप एक ही स्थान पर विभिन्न मिलों का कपड़ा, केमिस्ट की दुकान पर विभिन्न फर्मो की औषधियाँ आदि मिल जाती है। अगर वाणिज्य तन्त्र का इतना विकास न हुआ होता तो उपभोक्ताओं को एक ही स्थान पर सरलता से सस्ते दर पर वस्तुएँ उपलब्ध न हो पाती।

(ड़) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायक**— वाणिज्य के विकास के फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कल्पनातीत बृद्धि हुई है। आज प्रत्येक देश केवल अपने देश की वस्तुओं का ही उपभोग नहीं करता, वरन, दूसरे देशों की वस्तुओं पर भी निर्भर रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य की सहायता से एक देश का माल दूसरे देश के निवासियों को सहजता से उपलब्ध होता है।

(च) **आधुनिक व्यापार की कठिनाइयों को दूर करने के लिए आवश्यक**— आधुनिक समय में व्यापार दिन—प्रतिदिन पेंचीदा एवं तकनीकी होता जा रहा है। वाणिज्य की अनेक शाखाएँ हो गई हैं। इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया है। व्यवसाय के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले व्यक्ति को व्यापार के अन्तर्राष्ट्रीय नियमों, बैंकिंग प्रणाली के साख, ऋण और जमा की स्थितियों, श्रम—प्रबंधन के नियमों, टैक्स नीतियों आदि की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। वाणिज्य शिक्षा इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

1.3.5 वाणिज्य की विशेषताएँ—

वणिज्य की निम्नलिखित विशेषताएँ है—

(क) वाणिज्य को कला तथा विज्ञान दोनों ही माना जाता है।

(ख) वाणिज्य के बिना व्यावसायिक कार्य का होना लगभग असम्भव है।

(ग) वाणिज्य उपभोक्ता एवं उत्पादन के बीच सम्बन्ध बनाता है।

(घ) वाणिज्य में उत्पादक से वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदकर उपभोक्ताओं को बेची जाती हैं।

(ड़) वाणिज्य के द्वारा वस्तुओं का वितरण आसान होता है।

(च) वाणिज्य का क्षेत्र व्यापक होता है। इसमें व्यापार की सहायक क्रियायें सम्मिलित होती हैं।

(छ) वाणिज्य से देश में समृद्धि आती है।

(ज) इससे रोजगार में वृद्धि होती है।

(झ) अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ बाहर से मंगा सकते हैं तथा अतिरिक्त उत्पादन को दूसरी जगह बेचकर मुनाफा कमा सकते हैं।

(ञ) वर्तमान विश्व मे वही राष्ट्र शक्तिशाली है जो आर्थिक रूप से समृद्ध है। अतः वाणिज्य को बढ़ाना देकर सभी राष्ट्र समृद्ध होने पर बल दे रहे हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. अंग्रेजी शब्द Commerce लैटिन भाषा के किन दो शब्दो से मिलकर बना है।

....

....

2. ईविन थामस ने वाणिज्य की क्या परिभाषा दी है?

....

....

....

3. वाणिज्य के क्षेत्र कौन–कौन से है?

....

....

....

4. वाणिज्य के किन्हीं चार महत्व को बताइये।

....

....

....

5. वाणिज्य की तीन विशेषताएँ बताईये।

....

....

....

1.4 सारांश

वैश्वीकरण ने राष्ट्रों की सीमाओं को अर्थहीन बना दिया है। वैश्वीकरण का आधार वाणिज्य ही है। आज के युग में कोई राष्ट्र आर्थिक/वाणिज्यिक रूप से अकेला नहीं रह सकता। अतः पारस्परिक निर्भरता आज के समय की सच्चाई है। वाणिज्य वस्तुतः व्यापक अर्थ वाला शब्द है। इसमें व्यापार एवं व्यापार की सहायक क्रियायें जैसे– बैंकिंग, बीमा, परिवहन, संचार, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय टैक्स और श्रम कानून आदि सम्मिलित होते हैं। इसलिए व्यापार को सम्भव बनाने वाली सभी क्रियाओं को अलग–अलग रूप में प्रस्तुत करने के अलावा एक शब्द वाणिज्य में समाहित कर दिया जाता है। यह विज्ञान एवं कला दोनों है। किसी राष्ट्र की उन्नति एवं अवनति में वाणिज्य का महत्व स्वयंसिद्ध है। इसकी इन्हीं विशेषताओं के कारण प्रत्येक राष्ट्र अपनी समृद्धि हेतु वाणिज्य को अधिकाधिक बढ़ावा दे रहे हैं। विश्वशक्ति अमेरिका अपनी आर्थिक शक्ति के दम पर ही विश्व का सबसे शक्तिशाली देश बना हुआ है। 16वीं शताव्दी में यूरोपीय राष्ट्रों ने व्यापार करने के लिए ही विश्वभर में अपने उपनिवेश स्थापित किये। एशिया टाइगर कहे जाने वाले राष्ट्रों– इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड आदि को यह खिताब उनके आर्थिक विकास के कारण ही मिला है। आज अपने आर्थिक विकास के बल पर ही चीन विश्व की नई ताकत बनकर उभरा है इसमें उसके व्यापारोन्मुखी निर्यातोन्युखी व्यापार का बड़ा योगदान है। अतः सारांश रूप में कहा जा सकता है कि देश व उसके नागरिक की समृद्धि तथा ताकत वाणिज्य के ताकत व कुशलता में निहित होती है।

1.5 अभ्यास के प्रश्न

1. वाणिज्य को परिभाषित कीजिए।
2. वाणिज्य के विकास में परिवहन के साधनों के महत्व को रेखांकित कीजिए।
3. वाणिज्य के विकास में बैंकिंग प्रणाली के योगदान को संक्षेप में समझाइये।
4. वाणिज्य की कोई पाँच विशेषताएँ बताइये।
5. राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अन्तर बताइये।

1.6 चर्चा के बिन्दु

1. राष्ट्र के आर्थिक विकास में वाणिज्य के महत्व पर चर्चा कीजिए।
2. राष्ट्र में वाणिज्यिक गतिविधियों के विस्तार एवं सुगमता में परिवहन प्रणाली के योगदान पर चर्चा कीजिए।
3. रोजगार सृजन में वाणिज्य के महत्व पर चर्चा कीजिये।
4. बैंकिंग प्रणाली के महत्व पर चर्चा कीजिए।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. Commerce शब्द लैटिन भाषा के Commercium शब्द से बना है। जो दो शब्दों Com (Together) एवं Merx (Mechandise) से मिलकर बना है।
2. ईविन थॉमस के अनुसार, ''वाणिज्यिक व्यवसाय सामानों की खरीद व बिक्री, वस्तुओं के आदान–प्रदान और तैयार माल के वितरण से सम्बन्धित है।''
3. वाणिज्य के क्षेत्र निम्नवत् है–

   1. परिवहन
   2. संचार
   3. बीमा
   4. बैंकिंग
   5. व्यापार
   6. राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रिय टैक्स एवं श्रम कानून
4. वाणिज्य के चार महत्व निम्न हैं–

   1. मानवीय आवश्यकताओं पूर्ति में सहायक
   2. आर्थिक विकास में उपयोगी
   3. उपभोक्ताओं का लाभ
   4. श्रमिकों को लाभ
5. वाणिज्य की तीन विशेषताएँ निम्न हैं–

   1. यह कला एवं विज्ञान दोनों है।
   2. राष्ट्रों के विकास की धुरी है।
   3. उत्पादक एवं उपभोक्ता के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है।

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकं / संदर्भ

1. त्यागी, गुरसरनदास (2012), 'वाणिज्य शिक्षण,' अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
2. शर्मा, आर0ए0 (2001),' शिक्षण तकनीकी,' सूर्या पब्लिकेशन्स, मेरठ।
3. माथुर, एस0एस0, (1994),' शिक्षण कला,' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. https://en.m.wikipedia.org
5. https://www.etymonline.com
6. https://www.merriam-webster.com

इकाई 02 : वाणिज्य अधिगम, वाणिज्य शिक्षण और अधिगम का मनोविज्ञान, वाणिज्य शिक्षण रचनावाद एवं सक्रियतावाद

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 इकाई के उद्देश्य

2.3 वाणिज्य अधिगम

2.4 वाणिज्य शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान

2.4.1 वाणिज्य अधिगम का मनोविज्ञान

2.4.2 वाणिज्य अधिगम की मनोवैज्ञानिक विधियाँ

2.4.3 वाणिज्य शिक्षण का मनोविज्ञान

2.4.4 शिक्षण की प्रकृति

2.4.5 वाणिज्य शिक्षण की प्रकृति

2.5 रचनावाद

2.5.1 रचनावाद के प्रमुख सिद्धान्त

2.5.2 रचनावाद के लाभ

2.6 सक्रियतावाद

2.6.1 सक्रियतावाद के प्रमुख सिद्धान्त

2.6.2 सक्रियतावाद के लाभ

2.7 सारांश

2.8 अभ्यास के प्रश्न

2.9 चर्चा के बिन्दु

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे ज्ञान की किसी शाखा का विस्तार किया जा सकता है। ज्ञान का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तातंरण हेतु शिक्षण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वाणिज्य ज्ञान विज्ञान की वह शाखा है। जिसने मानव जीवन को समृद्ध एवं सुखमय बनाने में अतुलनीय योगदान दिया है। किसी राष्ट्र की उन्नति वहाँ वाणिज्य की स्थिति पर निर्भर करती है। संक्षेप में कहा जाये तो राष्ट्र का विकास, वाणिज्य के विकास पर निर्भर करता है। ऐसे में वाणिज्य का अधिगम एवं शिक्षण किसी भी राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण है। अगर अपने समाज एवं राष्ट्र को उन्नति की तरफ ले जाना है तो वाणिज्य के शिक्षण एवं अधिगम पर पर्याप्त ध्यान देना होगा। भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाना है तो इसके नीति नियंताओं को वाणिज्य शिक्षा पर विशेष ध्यान देना होगा। वाणिज्य शिक्षण को रोचक एवं बोधगम्य बनाने के लिए शिक्षण अधिगम की मनौवैज्ञानिक विधियों पर भी ध्यान देना होगा। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि अन्तर्निहित शक्तियों का सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास ही शिक्षा है।" यह परिभाषा बताती है कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का ही विकास होता है। लेकिन यह सत्य है कि शिक्षा के अभाव में व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है। शिक्षा

ही वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य की समस्त क्षमताएं निखरती है। शिक्षा मनुष्य की क्षमताओं को निखारने हेतु एक्सलेटर का कार्य करती है। शिक्षा के माध्यम से ही समाज अपनी संचित ज्ञान राशि को नई पीढ़ी तक पहुंचाता है। अगर शिक्षा माध्यम न रहे तो समस्त मानव समाज की उपलब्धियाँ उनकी पीढ़ी के साथ यहीं समाप्त हो जायेंगी। ऐसी स्थिति में आने वाली पीढी को नये सिरे से अनुभव अर्जित करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति अत्यन्त भयावह होगी। प्रत्येक पीढ़ी को शून्य से शुरूआत करनी पड़ेगी। इस तरह से मानव समाज में अनुभव का संसार संकीर्ण हो जायेगा। शिक्षा के द्वारा ज्ञान का संरक्षण, विकास, संवर्धन एवं अगली पीढ़ी को हस्तांतरण भी होता है। वाणिज्य एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ अनुभव का संसार जितना समृद्ध होगा व्यवसायी का विकास उतना ही होता है। ऐसे में शिक्षा का महत्व स्वतः बढ़ जाता है। व्यापार व व्यवसाय के गुण मूलतः एक पीढ़ी से दूसरी पीढी को हस्तांतरित होते हैं। यही कारण है अधिकतर व्यवसायी परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी व्यवसाय का रहे होते हैं। उनको व्यवसाय की शिक्षा पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त होती है। ऐसे स्थिति में वाणिज्य शिक्षा का महत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

2.2 इकाई के उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. वणिज्य अधिगम का अर्थ बता सकेंगे।
2. वणिज्य अधिगम की मनोवैज्ञानिक विधियों की चर्चा कर सकेंगे।
3. वाणिज्य शिक्षण के मनोविज्ञान को समझा सकेंगे।
4. रचनावाद की विवेचना कर सकेंगे।
5. सक्रियतावाद की व्याख्या कर सकेंगे।

2.3 वाणिज्य अधिगम

सीखना एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। व्यक्ति जन्म से ही सीखना प्रारम्भ कर देता है और अंतिम साँस तक कुछ न कुछ सीखता रहता है। व्यक्ति कहीं भी, किसी भी समय, किसी से भी कुछ भी सीख सकता है। सीखने को अधिगम भी कहते हैं। सीखने का मानव जीवन में सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति जो भी व्यवहार करता है उसका अधिकांश भाग सीखने अथवा सीखने की प्रक्रिया से प्रभावित रहता है। वास्तव में सीखना मानव जीवन की कुँजी है। सीखने के फलस्वरूप ही व्यक्ति अपने व्यवहार को परिष्कृत करता है। वाणिज्य शास्त्र एक ऐसा विषय है जो विज्ञान एवं कला दोनों है। यह निर्विवाद सत्य है कि वाणिज्य के क्षेत्र में सफल और अत्यन्त सफल होने के लिए निरन्तर सीखना पड़ता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। यह क्षेत्र दुनिया का सबसे तीव्रगति से परिवर्तनशील क्षेत्र है। यहॉ परिवहन, तकनीकी, उत्पाद, बैकिंग, सरकारी नीति, फैशन, प्रबन्धन, नये उत्पाद की उपलब्धता आदि में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। यही कारण है कि वाणिज्य के क्षेत्र में लगे लोगों को नये परिवर्तनों के साथ खुद का सामंजस्य बैठाने के लिए निरन्तर सीखना पड़ता है। विश्व– व्यापार जगत में हो रहे परिवर्तन से अवगत होते रहना और तद्नुरूप स्वयं को ढालना पड़ता है। इस तरह वाणिज्य के क्षेत्र में निरन्तर सीखना सबसे अनिवार्य तत्व है। यहाँ पर जो अपने व दूसरों के अनुभवों से सीखता नहीं वह पिछड़ जाता है। वाणिज्य के क्षेत्र में नित हो रहे नूतन बदलावों से अवगत रहना भी आवश्यक होता है। बहुत दिन नहीं हुए जब कैमरा में फोटो रील के द्वारा बनते थे और फ्यूजीफिल्म रील बनाने वाली दुनिया की सबसे बड़ी कम्पनी थी। लेकिन वह समय के साथ खुद में बदलाव नहीं कर सकी अतः बंद हो गयी। इसी तरह 20वीं सदी के बाद व्यापार क्षेत्र में इतने बदलाव हो चुकें हैं जिसकी मानव सभ्यता ने कल्पना भी नहीं की थी। कल तक जो उद्यमी और कम्पनियाँ दुनिया पर राज कर रहे थे आज उनका कोई नाम लेने वाला नहीं है और वाणिज्य के क्षितिज पर नये सितारे अपनी चमक विखेर रहे हैं। इन सबके बीच वही खिलाड़ी टिके रहे जिन्होंने अपने आपको समयानुकूल बनाये रखने की कला सीख ली। इस तरह से देखा जाय तो वाणिज्य का क्षेत्र सबसे तीव्र गति से बदलने वाला क्षेत्र है। अतः दूसरे विषयों की अपेक्षा यहाँ तीव्र गति से सीखने का महत्व सबसे अधिक है।

2.4 वाणिज्य शिक्षण और अधिगम का मनोविज्ञान

वाणिज्य शिक्षण और अधिगम के मनोविज्ञान को हम निम्न रूपों में समझ सकते हैं–

2.4.1 वाणिज्य अधिगम का मनोविज्ञान

वाणिज्य अधिगम के मनोविज्ञान को समझने के लिए सबसे पहले अधिगम को समझना होगा। इस हेतु ख्यातिलब्ध विद्वानों द्वारा सीखने की दी गयी प्रमुख परिभाषाएँ निम्नवत् है–

(क) बी0एफ0स्किनर के अनुसार–''अधिगम व्यवहार में अनुकूलन की एक प्रक्रिया है।'' स्किनर की परिभाषा यह बतलाती है कि अनुकुलन ही अधिगम है। व्याक्ति अपने परिवेश के साथ निरंतर अनुकूलन करता है। इस प्रक्रिया में वह निरन्तर सीखता रहता है। व्यक्ति अपने जीवन में क्षण–प्रतिक्षण अनुकूलन करता है। अतः वह समय कभी नही आता जब अनुकूलन न हो रहा हो। अनुकूलन की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। अतः अधिगम की प्रक्रिया भी आजीवन चलती है। अनुकूलन का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। यथा – व्यक्ति अपने जीवन में प्राकृतिक पर्यावरण, परिवार, पास–पड़ोस, समाज, व्यवसाय, व्यक्तिगत रूचियों, आध्यामिक आवश्यकताओं इत्यादि सभी क्षेत्रों में अनुकूलन करता है। अतएव कहा जा सकता है कि अनुकूलन एवं आधिगम जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है।

(ख) वुडवर्थ के अनुसार ''नवीन ज्ञान तथा नवीन प्रतिक्रियाओं का अर्जन करने की प्रक्रिया अधिगम प्रक्रिया है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन, विश्लेषण तथा व्याख्या से स्पष्ट है कि–

(1) अधिगम कोई परिणाम न होकर प्रक्रिया है।

(2) अधिगम प्रक्रिया सदैव ही उद्देश्यपूर्ण होती है जो व्यक्ति को समायोजन तथा अनुकूलन के लिए तैयार करती है।

(3) अधिगम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। इसमें मानव व्यवहार के सभी क्षेत्र यथा– ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोचालक सम्मिलित है।

(4) अधिगम व्यवहार में परिवर्तन की प्रक्रिया है परन्तु बीमारी, थकान, संवेगात्मक स्थिति, परिपक्वता एवं मादक द्रव्यों के सेवन इत्यादि के कारण व्यवहार में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों को अधिगम में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

(5) अधिगम अपेक्षाकृत स्थायी प्रकृति का व्यवहार परिवर्तन है।

(6) अधिगम सदैव नवीन नहीं होता अपितु यह पूर्व अनुभव का परिमार्जन अथवा निषेध भी होता है।

(7) अधिगम–अभ्यास, प्रशिक्षण तथा अनुभव पर आधारित होता है।

2.4.2 वाणिज्य अधिगम की मनोवैज्ञानिक विधियाँ

वाणिज्य अधिगम की अनेक मनोवैज्ञानिक विधियाँ हैं जिसमें प्रमुख इस प्रकार है–

(1) करके सीखना– यह वाणिज्य अधिगम की सबसे प्रभावशाली विधि है। इसमें व्यक्ति स्वयं करके सीखता है। इससे प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है। इसके द्वारा व्यक्ति को प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है। सामाजिक जीवन मे जब हम अनुभव की बात करते हैं तो उसका आशय करके सीखने से होता है। वाणिज्य एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ क्रियात्मक अनुभव बहुत जरूरी होता है। इसलिए आजकल व्यवसायों में इन्टर्नशिप का प्रचलन बढ़ा है।

(2) निरीक्षण करके सीखना– व्यापार के क्षेत्र में सीखने की यह सर्वाधिक प्रचलित विधि है। इसके अंतर्गत व्यक्ति/छात्र स्वयं निरीक्षण करके नवीन बातों को सीखता है। निरीक्षण करके सीखना इससे कम समय व कम श्रम में अधिक से अधिक सीखने का अवसर प्राप्त होता है। इसमे छात्र दूसरे के कार्य का निरीक्षण कर अनुभव अर्जित करता है।

(3) वाद–विवाद विधि– परिचर्चा, वाद–विवाद, संवाद आदि वाणिज्य अधिगम की उपयोगी विधियाँ हैं।

(4) अनुकरण विधिः– वाणिज्य के क्षेत्र में अधिगम की यह विधि बहुत उपयोगी है। इसमे छात्र दूसरों को कार्य करते हुए देखकर सीखते हैं।

(5) **वाचन विधियाँ**— छोटी कक्षाओं के छात्र वाचन विधि के द्वारा सबसे अधिक सीखते हैं। इसमें छात्र सस्वर वाचन करके पाठ को याद करता है।

(6) **अनुकरण विधि**— वाणिज्य अधिगम की यह महत्वपूर्ण विधि है। इसमें छात्र दूसरों के व्यवहार का अनुकरण करके सीखता है।

(7) **प्रयास एवं त्रुटि विधि**— अधिगम के लिए प्रयुक्त की जाने वाली सबसे उपयोगी विधि है। इसमें छात्र बार—बार अभ्यास करके अपनी त्रुटियों का परिमार्जन करता है और गलतियों से सीखते हुए आगे बढ़ता है।

(8) **पूर्ण विधि**— इस विधि में छात्र सम्पूर्ण पाठ को एक साथ सीखता है। इसमें पूरे विषय वस्तु को एक साथ समझकर अधिगम किया जाता है। इसमें छात्र विषय को खण्डों मे बाँटकर सीखने के अलावा एक इकाई के रूप में समझकर सीखता है। जब अधिगमकर्ता पूरे परिवेश को समझ जाता है तब उसमें कार्य योजना को लेकर एक अंतर्दृष्टि विकसित होती है। यह अंतर्दृष्टि पूर्ण को समझने हेतु महत्वपूर्ण होती है।

(9) **अंश विधि**— इस विधि में छात्र सम्पूर्ण पाठ को छोटे—छोटे अंशों में बाँटकर सीखता है। इससे सीखने में सरलता होती है साथ ही उत्साह बना रहता है। इसमें सीखने वाला सम्पूर्ण पाठ को एक बार मे याद न करके खण्ड—खण्ड में सीखता है। इस तरह एक—एक खण्ड को सीखते हुए वह पूर्ण पाठ को सीख लेता है।

वाणिज्य में सीखने की उपरोक्त वर्णित विधियाँ परस्पर एक दूसरे से न तो भिन्न है और न ही अंतिम है। छात्र अपनी आवश्यकतानुसार इनमें कुछ विधियों को एक साथ मिलाकर सीख सकता है। यद्यपि कि यह दावा करना अत्यन्त कठिन है कि सीखने की अमुक विधि सबसे उत्तम है। वास्तव में किसी भी एक विधि को सर्वश्रेष्ठ कहना उचित नहीं है। पाठ्यसामग्री, बालक की शारीरिक व मानसिक स्थिति तथा अन्य वातावरणीय कारकों के अनुरूप कोई भी एक विधि अन्य विधियों में श्रेष्ठ हो सकती है।

2.4.3 वाणिज्य शिक्षण का मनोविज्ञान

सामान्यतः सीखना एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जबकि शिक्षण एक सामाजिक क्रिया है। वाणिज्य शिक्षण का मनोविज्ञान सीखने में व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता, व्यक्तित्व, रूचि, अभिक्षमता, प्रेरणा इत्यादि का महत्वपूर्ण योगदान होता है। उच्च बौद्धिक क्षमता वाला व्यक्ति भी तब तक नहीं सीखता है जब तक उसकी विषय मे रूचि न हो। प्रेरणा के अभाव में सीखने की गति अत्यन्त धीमी होती है। कभी—कभी तो सीखने की गति रूक जाती है। इसी तरह उत्साही और मेहनती व्यक्तित्व के स्वामी छात्र तेजी से सीखते हैं जबकि आलसी छात्र धीमी गति से सीखते हैं। इसी तरह शिक्षण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच चलने वाली सामाजिक अन्तःक्रिया है। कक्षा—कक्ष का भौतिक वातावरण, सीखने की विधि, विद्यालय का सामाजिक वातावरण, शिक्षक का व्यक्तित्व और तकनीकी पक्ष सभी कुछ शिक्षण को प्रभावित करते है। अतः शिक्षण को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन कार्य है। यहाँ शिक्षण को ठीक से समझने हेतु शिक्षण के अर्थ को समझना आवश्यक है।

(अ) **एकतंत्र शासन में शिक्षण का अर्थ**— एकतंत्र शासन में शिक्षण की प्रक्रिया के अंतर्गत शिक्षक का स्थान प्रधान माना जाता है और छात्र का स्थान गौण होता है। छात्र शिक्षक को आदर्श मानते हैं और शिक्षक अपने व्यक्तित्व से उनको प्रभावित करता है। इसमें शिक्षण के समय छात्र केवल एक श्रोता का कार्य करता है और शिक्षक अधिक सक्रिय रहता है। इस प्रकार के शिक्षण में आलोचना के लिए कोई स्थान नहीं होता है।

(ब) **प्रजातंत्र शासन में शिक्षण का अर्थ**— प्रजातंत्र शासन में शिक्षण को अन्तःक्रियात्मक माना जाता है। अध्यापक तथा छात्रों के मध्य शाब्दिक तथा अशाब्दिक अन्तःक्रिया होती है। इस शिक्षण में दोनों (शिक्षक एवं छात्र) का क्रियाशील होना आवश्यक है। प्रजातांत्रिक शिक्षण प्रणाली में शिक्षक का स्थान एक निर्देशक या मार्गदर्शक का होता है। इस तरह के शिक्षण प्रक्रिया में छात्र क्रियाशील रहते हैं। शिक्षण में स्वतंत्र अनुशासन पर बल दिया जाता है। इसमें छात्र एवं शिक्षक दोनों ही एक दूसरे के विचारों का

सम्मान करते हैं।

(स) हस्तक्षेप रहित शासन में शिक्षण का अर्थ– इस प्रकार के शिक्षण में शिक्षक की अपेक्षा छात्र अधिक क्रियाशील रहता है। शिक्षक छात्र के लिए ऐसी परिस्थितियों को प्रस्तुत करता है जो अपूर्ण होती है या उसमें बाधाएँ होती हैं। छात्र इस कार्य को पूरा करते हुए बाधाओं को पार करने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में छात्र सीखता है। इस शिक्षण पद्धति में शिक्षक का व्यवहार मित्रवत होता है।

2.4.4 शिक्षण की प्रकृति

शिक्षण की प्रकृति को समझने से पूर्व शिक्षण की प्रक्रिया को समझना जरूरी है। यह इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि इसको अच्छे से समझे बिना शिक्षण की प्रकृति को ठीक से समझा नहीं जा सकता है। शिक्षण की क्रिया मूलतः शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच चलती है। इसीलिए एडम्स महोदय ने शिक्षण को द्विध्रुवीय प्रक्रिया कहा है। उनके अनुसार शिक्षक का व्यक्तित्व अधिक विकसित होता है जबकि छात्र कम विकसित होता है। अतः ज्ञान का प्रवाह शिक्षक से छात्र की तरफ होता है। छात्र अपनी शंकाओं को गुरू के समक्ष बताता है। शिक्षक उसका समाधान करता है। इसमें छात्र की रूचि रूझान महत्वपूर्ण नहीं होती है। इसमें यह माना जाता है कि छात्र का शिक्षक के व्यक्तित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता है। रायबर्न महोदय ने शिक्षा की प्रक्रिया को त्रिध्रुवीय माना है। आपके अनुसार शिक्षा के तीन ध्रुव – शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यक्रम होते हैं। शिक्षण की औपचारिक प्रक्रिया जिस परिवेश में होती है उसमें यही तीन ध्रुव सम्मिलित होते हैं। पाठ्यक्रम के द्वारा ही शिक्षक कम विकसित व्यक्तित्व (छात्र) के विकास को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है। बिना निश्चित पाठ्यक्रम के शिक्षण की औपचारिक प्रक्रिया को निश्चित स्वरूप प्रदान नहीं किया जा सकता है। शिक्षाशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण प्रक्रिया की अनेकों परिभाषायें दी है। इन परिभाषाओं के विश्लेषण से शिक्षण प्रक्रिया की प्रकृति का बोध होता है। शिक्षण की प्रकृति को निम्नानुसार समझा जा सकता है–

(1) शिक्षण एक अन्तःक्रिया है– शिक्षाविदों एवं मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण को एक अन्तः प्रक्रिया कहा है क्योंकि यह प्रक्रिया शिक्षक एवं छात्रों के मध्य होती है।

(2) शिक्षण एक सामाजिक तथा व्यावसायिक प्रक्रिया है– शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है क्योंकि यह छात्रों एवं शिक्षक के समूह में होती है। इस प्रक्रिया हेतु कम से कम दो लोग शिक्षक एवं छात्र का होना जरूरी है। शिक्षण एक व्यावसायिक प्रक्रिया है क्योंकि इससे शिक्षक के हित एवं आजीविका जुड़ी होती है।

(3) शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है– अध्यापक कक्षा शिक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व अधिगम उद्‌देश्यों का निर्धारण करता है जिसको वह शिक्षण के माध्यम से प्राप्त करना चाहता है। इस तरह शिक्षण एक उद्‌देश्यपूर्ण क्रिया है।

(4) शिक्षण एक विकासात्मक प्रक्रिया है– शिक्षण के द्वारा छात्रों के ज्ञान, कौशल एवं व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। इस तरह शिक्षण एक विकासात्मक प्रक्रिया है।

(5) शिक्षण कला एवं विज्ञान दोनों है– शिक्षण की प्रकृति में कला एवं विज्ञान दोनों सम्मिलित हैं। शिक्षण का नियोजन तथा मूल्यांकन की क्रिया का स्वरूप वैज्ञानिक है। जबकि शिक्षण इस प्रक्रिया का कलात्मक पक्ष है। इसमें शिक्षक अपने शिक्षण कला/कौशल का प्रयोग करता है।

(6) शिक्षण भाषा सम्प्रेषण का कार्य करती है– शिक्षण कार्य के समय तथ्यों, प्रत्ययों, सिद्धान्तों तथा सामान्यीकरण का बोध भाषा सम्प्रेषण के माध्यम से ही शिक्षक कराता है।

(7) शिक्षण एक उपचार विधि है– शिक्षण कार्य में छात्रों की कमजोरियों का निदान करके उन्हें सुधार के लिए उपचार दिया जाता है।

(8) शिक्षण एक तार्किक प्रक्रिया है– शिक्षण की पूरी क्रिया एक तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यवस्थित किया जाता है। इसमें छात्रों को प्रवेशित व्यवहार से लेकर अधिगम उद्‌देश्यों तक पहुँचाया जाता है। इस दौरान प्रत्येक व्यवहार/कार्य का एक तार्किक क्रम होता है।

(9) शिक्षण का मापन किया जाता है– निरीक्षण विधियों के प्रयोग द्वारा शिक्षक व्यवहार का मापन और

व्यवहार के स्वरूप का विश्लेषण भी किया जाता है।

(10) **शिक्षण में सुधार तथा विकास भी किया जाता है**– पृष्ठपोषण की प्रविधियों के द्वारा शिक्षण में अपेक्षित सुधार एवं विकास किया जाता है।

(11) **शिक्षण प्रशिक्षण से लेकर अनुदेशन तक एक सतत् प्रक्रिया है**– शिक्षण की क्रिया प्रशिक्षण से प्रारम्भ होती है। क्रमागत रूप में अनुदेशन की प्रक्रिया तक चलती है।

(12) **शिक्षण एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है**– शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा को त्रिध्रुवीय प्रक्रिया माना है। बी०एस०ब्लूम के अनुसार शिक्षण के तीन पक्ष– (1) शिक्षण उद्देश्य (2) सीखने के अनुभव (3) व्यवहार परिवर्तन होते हैं।

(13) **शिक्षण निर्देशन की प्रक्रिया है**– शिक्षण के द्वारा छात्र के व्यवहार में एक निश्चित दिशा में परिवर्तन किया जाता है। इस तरह से यह निर्देशन की प्रक्रिया है।

(14) शिक्षण एक औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रक्रिया है।

(15) शिक्षण कार्य आमने–सामने होने वाली प्रक्रिया है।

2.4.5 वाणिज्य शिक्षा की प्रकृति

वाणिज्य शिक्षा व्यावसायिक अध्ययन का ऐसा अनुशासन है जो भावी नागरिकों में ज्ञान, कौशल, अनुभव एवं दृष्टिकोण का इस प्रकार विकास करता है कि वह कुशल व्यावसायिक, प्रशिक्षित कामगर, सक्षम व पेशेवर प्रबन्धक, कुशल प्रशासक, योजनाकार आदि के रूप में विकसित हो जाता है। वाणिज्य शिक्षा की प्रकृति को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है–

(1) वाणिज्य शिक्षा में विभिन्न नियमों, सिद्धान्तों, तथ्यों, प्रक्रियाओं विधियों आदि के अध्ययन के साथ ही उनके व्यावसायिक जीवन में अनुप्रयोग को भी सम्मिलित किया जाता है। अतः वाणिज्य शिक्षा कला एवं विज्ञान दोनों है।

(2) वाणिज्य शिक्षा में व्यावसायिक जगत में समायोजन हेतु आवश्यक ज्ञान, कौशल एवं मनोवृत्ति को सम्मिलित किया जाता है।

(3) वाणिज्य शिक्षा के अंतर्गत पुस्तपालन, लेखांकन, व्यावसायिक गणित, सम्प्रेषण, टंकण, आशुलिपि, बैंकिंग, बीमा, परिवहन, कार्यालय प्रबन्धन, अंकेक्षण, संगठनात्मक व्यवहार, विक्रयकला, नेतृत्व आदि का अध्ययन एवं अध्यापन सम्मिलित है।

(4) वाणिज्य शिक्षा में उपभोक्ताओं एवं ग्राहकों की संतुष्टि एवं कल्याण को सुनिश्चित करते हुए स्वच्छ एवं सुचिता के साथ व्यवसाय को संचालित एवं सम्पादित करने को प्रोत्साहित किया जाता है।

(5) वाणिज्य शिक्षा का सम्बन्ध धन के उपार्जन, बचत, संचय एवं मितव्ययिता पूर्ण उपयोग से होता है।

(6) वाणिज्य शिक्षा के माध्यम से सरकार भावी नागरिकों में आर्थिक नागरिकता के गुणों का विकास करने का प्रयत्न करती है।

(7) वाणिज्य शिक्षा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थी के व्यक्तित्व का विकास एक कुशल, प्रभावशाली एवं सक्षम व्यवसायी के तौर पर करती है।

(8) वाणिज्य शिक्षा में व्यवसाय की बारीकियों, जटिल आसन्न संकटों, प्रतियोगिता, प्रतिकूल परिस्थितियों, चुनौतियों एवं समस्याओं आदि की समझ एवं उनके निदान/समाधान आदि की क्षमता का विकास किया जाता है।

(9) वाणिज्य शिक्षा में मनपसंद व्यावसाय के चयन, उसमें प्रवेश, सफल संचालन, समायोजन एवं तरक्की करने की कुशलता का विकास किया जाता है।

(10) वाणिज्य शिक्षा में व्यवसायिक क्षेत्र को अद्यतन समयानुकूल एवं समसामयिक आवश्कताओं के अनुरूप रूपांतरित करने हेतु आवश्यक ज्ञान के सृजन के लिए वांछित नवाचार शोध एवं विकास के निष्पादन का

कार्य भी किया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. प्रजातांत्रिक शासन में शिक्षण का अर्थ स्पष्ट करें।

....

....

....

2. वाणिज्य शिक्षा की कम से कम दो विशेषताएं लिखिए।

....

....

....

2.5 रचनावाद

रचनावाद शिक्षा में एक ऐसा सिद्धान्त है जो यह मानता है कि व्यक्ति या शिक्षार्थी ज्ञान और समझ को प्रत्यक्ष प्रक्रिया के भीतर निष्क्रिय रूप से प्राप्त नहीं करते हैं, बल्कि वे अनुभव और सामाजिक प्रवचन के माध्यम से नई समझ और ज्ञान का निर्माण करते हैं। नई जानकारी को ग्रहण करते समय वे पूर्व अनुभवों व समझ को जोड़कर आगे बढ़ते हैं। ऐसा करते समय या तो उनके अनुभव समृद्ध होते हैं अथवा पूर्व अनुभवों का परिमार्जन होता है। वास्तव में सीखना एक सतत्, स्वाभाविक एवं निरन्तर चलने वाली सामाजिक प्रक्रिया हैं। सीखने वाला अपने वातावरण से परस्पर अन्तःक्रिया करते हुए स्वयं के अनुभवों से सीखता है। छात्र अपने आस पास की चीजों से जुड़े रहते हैं। खोजबीन करना, सवाल पूछना, करके देखना, वस्तुओं/ घटनाओं के बारे में अपने नजरिये की व्याख्या करना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। सीखने के इसी स्वरूप को रचनावाद सिद्धान्त कहा जाता है। इसमें विद्यार्थी अपने ज्ञान की रचना अथवा निर्माण वातावरण से अंतःक्रिया करते हुए अनुभवों से स्वयं करता है। इस तरह से रचनावाद को सीखने का प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक सिद्धान्त कहें तो गलत नहीं होगा। दूसरे शब्दों में ज्ञान सृजन के इसी प्राकृतिक विधा को शिक्षाशास्त्र में रचनावाद कहा गया है।

रचनावाद बालकेन्द्रित शिक्षा का आधारभूत सिद्धान्त है। इसमें छात्रों के पूर्व अनुभवों उनकी जिज्ञासाओं और उनकी सक्रिय सहभागिता को केन्द्र में रखकर पठन–पाठन हेतु वातावरण तैयार किया जाता है। वास्तव में बाल केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक की भूमिका एक सुगमकर्ता के रूप में छात्रों को सीखने के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराने, उनका सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन करते हुए उन्हें अपनी क्षमताओं के विकास के अवसर उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सार रूप में कहे तो 'रचनावाद' गुणवत्तापरक एवं सार्थक शिक्षा का वह स्वाभाविक आनन्दमयी सिद्धान्त है। जिसमें छात्र अपना सर्वश्रेष्ठ विकास कर सकता है और वास्तविक जीवन में अपने ज्ञान का सही मायने में प्रयोग करते हुए कुशलतापूर्वक जीवनयापन कर सकता है। "वस्तुतः शिक्षा व्यवस्था का वास्तविक सरोकार छात्रों को सार्थक अनुभव देने वाली शिक्षा प्रदान करने का है। जिससे वे अपने अनुभव से उस यर्थाथ और व्यवहारिक ज्ञान का सृजन करें जो उन्हें कुशलतापूर्वक जीवनयापन करने योग्य बनाता है। रचनावाद एक ऐसा सिद्धान्त है जिसमें शिक्षार्थी पूर्व ज्ञान साथ नया ज्ञान जोड़कर नये अर्थ एवं समझ विकसित करते है। इसे अनेक रूपों में देखा जा सकता है। जैसेः– जीन पियाजे का संज्ञानात्मक रचनावाद, जान डीवी का संज्ञानात्मक रचनावाद शिक्षण सिद्धान्त जो ब्रूनर के द्वारा दिया गया।

2.5.1 रचनावाद के प्रमुख सिद्धान्त-

रचनावाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित है–

1. इसके अन्तर्गत ज्ञान का विकास सक्रियता के साथ होता है।
2. अधिगम व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रक्रिया है।
3. नये और पुराने ज्ञान को जोड़कर समझ विकसित किया जाता है।
4. सीखना सकारात्मक संदर्भ के साथ बढ़ाया जाता है।
5. सीखने में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है।

2.5.2 रचनावाद के लाभ-

रचनावाद के निम्नलिखित लाभ हैं:–

1. छात्रों को स्वतन्त्रता पूर्वक सोचने का अवसर प्रदान करता है।
2. छात्रों में आलोचनात्मक चिन्तन का विकास होता है।
3. यह अधिगम का विद्यार्थी केन्द्रित दृष्टिकोण है।
4. सक्रिय रूप से सीखने पर बल देती है।
5. यह रचनावाद को बढ़ावा देती है।

2.6 सक्रियतावाद

सक्रियतावाद जीवन के विविध क्षेत्रों जैसे–शिक्षा, व्यापार, राजनीति, समाज, पर्यावरण इत्यादि में सुधार, विकास और हस्तक्षेप करने का प्रयास है। इसमें समाज में सकारात्मक परिवर्तन करने की सद्इच्छा के साथ किया गया कार्य आता है। शिक्षा के क्षेत्र में सक्रियतावाद आमूलचूल परिवर्तन का वाहक बन जाता है। छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु प्रवेश प्रक्रिया, पाठ्यक्रम में बदलाव, शिक्षण पद्धति में सुधार, परीक्षा प्रणाली में सुधार, मूल्यांकन प्रणाली में सुधार आधारभूत अवसंरचनाओं में सुधार इत्यादि प्रमुख हैं। आप कह सकते हैं कि सम्पूर्ण शिक्षा जगत में बदलाव को लेकर किया जा रहा आन्दोलनकारी प्रयास सक्रियतावाद कहलाता है। वाणिज्य शिक्षा के क्षेत्र में सक्रियतावाद किसी भी देश में वाणिज्य शिक्षा का उद्देश्य उस राष्ट्र में आर्थिक शिक्षा, उद्योग, व्यापार आर्थिक नागरिकता का विकास करना होता है। इस दृष्टि से देखें तो आर्थिक सक्रियता में सामाजिक और आर्थिक नीति परिवर्तन के लिए सरकार, उपभोक्ताओं और व्यवसायों की आर्थिक शक्ति का उपयोग करना शामिल है। इसमें आमतौर पर अच्छे व्यवहार को सुदृढ़ करने के लिए तरजीही संरक्षण और बुरे व्यवहार तथा दबाव बनाने वाली कम्पनियों को व्यवसाय से बाहर जाने के लिए दंडित करना शामिल है। ब्राण्ड सक्रियता भी इसमें शामिल है। इसमें व्यवसाय सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं में अग्रणी भूमिका निभाता है। उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण, निवेशकों के हितों का संरक्षण प्रतिस्पर्धा कानून का निर्माण, कर्मचारी नियमन कानून निर्माण, शेयरधारकों के हितों का संरक्षण इत्यादि वाणिज्य के क्षेत्र में सक्रियतावाद के उदाहरण हैं। वाणिज्य शिक्षा में पाठ्यक्रमों का समसामयिक जरूरतों को ध्यान में रखकर निर्माण, शिक्षण संस्थानों व उद्योगों के बीच विभिन्न समझौतों जैसे– कैम्पस, इन्टर्नशिप, पार्टनरशिप, इनोवेटिव पाठ्यक्रम, उद्योग जगत व व्यापार जगत की आवश्यकाताओं को ध्यान में रखकर शोध पार्टनरशिप, व्यापार/उद्योग जगत द्वारा शोध कार्यो को वित्तीय सहयोग उपलब्ध कराना भी वाणिज्य शिक्षा के क्षेत्र में सक्रियतावाद के उदाहरण है। विश्व के नामचीन शिक्षण संस्थानों के साथ छात्रों के आवागमन और शोध समझौतों को भी इसी श्रेणी में रखा जाता है।

2.6.1 सक्रियतावाद के प्रमुख सिद्धान्त

सक्रियतावाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित है–

1. शिक्षकों की भूमिका में परिवर्तन आता है।

2. छात्रों की सक्रिय भागीदारी होती है।
3. वास्तविक जीवन की समझाओं का समाधान होता है।
4. छात्र एक दूसरे के साथ सहयोग से सीखते हैं।
5. शैक्षिक तकनीकि के उपयोग को बढ़ावा मिलता है।
6. मूल्यांकन की प्रक्रिया में परिवर्तन आता है।

2.6.2 सक्रियतावाद के लाभ

इसके निम्नलिखित लाभ हैं–

1. छात्रों में गहरी समझ विकसित होती है।
2. शिक्षार्थी सक्रियता के साथ सीखते हैं।
3. छात्रों को व्यावहारिक अनुभव प्राप्त होता है।
4. छात्रों में समूह भावना का विकास होता है।
5. मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार होता है।
6. शैक्षिक तकनीकि के प्रयोग से छात्र प्रभावी अधिगम करते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

3. रचनावाद के क्या लाभ हैं?

....

....

....

4. वाणिज्य शिक्षा के क्षेत्र में सक्रियतावाद के कौन–कौन सिद्धान्त हैं?

....

....

....

2.7 सारांश

आज की शिक्षा पद्धति में मनोविज्ञान की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। आज कल मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग शिक्षण एवं अधिगम दोनों के लिए होने लगा है। मनोवैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से शिक्षण एवं अधिगम दोनों रोचक एवं बोधगम्य बन गये है। वस्तुतः शिक्षा और शिक्षण की प्रक्रिया को समझने के लिए छात्र के मनोविज्ञान को समझना अतिआवश्यक होता है। छात्र की रूचि, बौद्धिक योग्यता, व्यक्तित्व की प्रकृति, उसकी क्षमताओ, आदि को समझे बिना शिक्षा एवं शिक्षण की प्रक्रिया सुचारू रूप से नहीं चल सकती है। वाणिज्य शास्त्र मे उपभोग और विनिमय दो ऐसे क्षेत्र हैं जिसके अध्ययन मे मनोवैज्ञानिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उपभोक्ताओ के मनोविज्ञान को समझना बहुत महत्वपूर्ण होता है। तभी उत्पादउनकी आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जा सकता है। इसी तरह विनिमय का विज्ञान पूरी तरह उपभोक्ता और विक्रेता के मनोविज्ञान से जुड़ा विषय है जो विक्रेता, उपभोक्ता के मन को जितनी अच्छी तरह समझता है वह उतना ही कुशल व्यवसायी बन सकता है। इसी तरह रचनावाद यह बतलाता है कि शिक्षण की प्रक्रिया अनुभव पर आधारित होने से बोध

एवं धारणा बेहतर होती है। रचनावाद की अवधारणा वर्तमान समय में वाणिज्य शास्त्र के शिक्षण एवं अधिगम का अनिवार्य अंग बन चुकी है। सक्रियतावाद समाज में सकारात्मक परिवर्तन करने की सद्इच्छा के साथ किया गया कार्य है। वाणिज्य शिक्षा के क्षेत्र में यही सक्रियतावाद आमूलचूल परिवर्तन का वाहक बन जाता है। जिसके अन्तर्गत–प्रवेश प्रक्रिया, पाठ्यक्रम सुधार, संसाधनों में बृद्धि, परीक्षा सम्बन्धी सुधार सभी सम्मिलित होते है।

2.8 अभ्यास के प्रश्न

1. वाणिज्य अधिगम पर संक्षित टिप्पणी लिखिए।
2. वाणिज्य अधिगम की मनोवैज्ञानिक विधियॉ कौन–कौन सी है?
3. वाणिज्य शिक्षण के मनोविज्ञान पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
4. वाणिज्य शिक्षण की प्रकृति को स्पष्ट कीजिए।
5. रचनावाद क्या है?
6. वाणिज्य शिक्षण में सक्रियतावाद के प्रभाव की विवेचना कीजिए।
7. रचनावाद एवं सक्रियतावाद की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

2.9 चर्चा के बिन्दु

1. रचनावाद क्या है चर्चा कीजिए।
2. सक्रियातावाद किसे कहते हैं? चर्चा कीजिए।
3. वाणिज्य अधिगम की मनोवैज्ञानिक विधियाँ किस प्रकार उपयोगी हैं? चर्चा कीजिए।
4. वाणिज्य शिक्षण का मनोविज्ञान क्या है? चर्चा कीजिए।

2.10 बोध प्रश्नो के उत्तर

1. प्रजातांत्रिक शिक्षण व्यवस्था में शिक्षक एंव छात्र दोनों के मध्य अन्तः क्रिया होती है। इसमें छात्र शिक्षक से प्रश्न पूछ सकता है। शिक्षक की भूमिका यहाँ सहयोगी एवं पथ–प्रदर्शक की होती है।
2. (क) वाणिज्य शिक्षा में व्यावसायिक जगत में समायोजन हेतु आवश्यक, ज्ञान, कौशल एवं मनोवृत्ति को सम्मिलित किया जाता है।

   (ख) वाणिज्य शिक्षा के माध्यम से सरकार भावी नागरिकों में आर्थिक नागरिकता के गुणों के विकास का प्रयत्न करती है।
3. रचनावाद के निम्नलिखित लाभ हैं:–
   (i). छात्रों को स्वतन्त्रता पूर्वक सोचने का अवसर प्रदान करता है।
   (ii). छात्रों में आलोचनात्मक चिन्तन का विकास होता है।
   (iii). यह अधिगम का विद्यार्थी केन्द्रित दृष्टिकोण है।
   (iv). सक्रिय रूप से सीखने पर बल देती है।
   (v). यह रचनावाद को बढ़ावा देती है।
4. सक्रियतावाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित है–
   (i). शिक्षकों की भूमिका में परिवर्तन आता है।
   (ii). छात्रों की सक्रिय भागीदारी होती है।
   (iii). वास्तविक जीवन की समझाओं का समाधान होता है।
   (iv). छात्र एक दूसरे के साथ सहयोग से सीखते हैं।

(v). शैक्षिक तकनीकि के उपयोग को बढ़ावा मिलता है।
(vi). मूल्यांकन की प्रक्रिया में परिवर्तन आता है।

2.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. त्यागी, गुरसरन दास (2012), 'वाणिज्य शिक्षण,' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. शर्मा, आर0ए0 (2001),' शिक्षण तकनीकी,' सूर्या पब्लिकेशन्स, मेरठ।
3. माथुर, एस0एस0, (1994),' शिक्षण कला,' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001
5. सिंह, आर0पी0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'पेडागागी आफ स्कूल सब्जेक्ट कामर्स,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001

इकाई 03 : पाठ्यचर्या सुधार, वाणिज्य शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 पाठ्यचर्या सुधार

3.3.1 पाठ्यचर्या के उद्देश्य

3.3.2 प्रचलित पाठ्यचर्या के दोष

3.3.3 पाठ्यचर्या सुधार के लिए सुझाव

3.4 वाणिज्य शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य

3.4.1 लक्ष्य का अर्थ

3.4.2 उद्देश्य का अर्थ

3.4.3 लक्ष्य तथा उद्देश्य में अन्तर

3.5 वाणिज्य शिक्षण के लक्ष्य

3.6 वाणिज्य शिक्षण के उद्देश्य

3.6.1 ब्लूम के अनुसार शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

3.6.1.1 संज्ञानात्मक पक्ष

3.6.1.2 भावात्मक पक्ष

3.6.1.3 मनोचालित पक्ष

3.7 वाणिज्य शिक्षण के शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप कार्यात्मक क्रियायें

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास के प्रश्न

3.10 चर्चा के बिन्दु

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

शिक्षा मनुष्य की अर्न्तनिहित शक्तियों का सर्वागीण विकास करती है। विकास की यह प्रक्रिया सुनियोजित तरीके से चले इस हेतु एक सुनिश्चित पाठ्यचर्या की आवश्यकता होती है। अगर यह कहें कि पाठ्यचर्या एक विस्तृत विचार है जिसमें मानव जीवन के विषय से सम्बन्धित सभी अनुभव सम्मिलित किये जाते हैं तो गलत नही होगा। इसमें कक्षा शिक्षण के साथ ही पाठ्यसहगामी क्रियायें भी सम्मिलित होती हैं। वाणिज्य शिक्षण की पाठ्यचर्चा में वे सभी अनुभव सम्मिलित होते हैं जो छात्र को वाणिज्य से सम्बन्धित सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ व्यवहारिक ज्ञान भी प्रदान करते हैं। यह छात्र के संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं मनोचालक सभी पक्षों का विकास करता है, तभी उसे एक अच्छा पाठ्यचर्या कहा जा सकता है। एक ऐसी पाठ्यचर्या जिसमें उपयुक्त तीनों पक्षों का संतुलित विकास नही होता है, दोषपूर्ण पाठ्यचर्या कही जाती है।

3.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. पाठ्यचर्या के उद्देश्य बता सकेंगे।
2. प्रचलित पाठ्यचर्या के दोष बता सकेंगे।
3. पाठ्यचर्या में सुधार के उपाय सुझा सकेंगे।
4. लक्ष्य एवं उद्देश्य में अन्तर कर सकेंगे।
5. शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
6. संज्ञानात्मक पक्ष की विभिन्न श्रेणियों की कार्यात्मक क्रियायें बता सकेंगे।
7. वाणिज्य शिक्षण के उद्देश्य बता सकेंगे।
8. वाणिज्य शिक्षण के लक्ष्य तय कर सकेंगे।
9. उद्देश्यों को मापनीय व्यवहार के रूप में लिख सकेंगे।

3.3 पाठ्यचर्या सुधार

पाठ्यचर्या की अवधारणा अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इसके अंतर्गत वे सभी अनुभव आ जाते हैं, जिन्हें छात्र विद्यालय के तत्वावधान में प्राप्त करता है। इसमें कक्षा के अन्दर तथा बाहर दोनों ही स्थानों पर आयोजित की जाने वाली सभी पाठ्य एवं पाठ्येत्तर क्रियाएं आ जाती हैं। इसमें सभी बौद्धिक विषय, विविध कौशल, अनेकानेक कार्य, पढ़ना–लिखना, शिल्प, खेल–कूद आदि क्रियाकलाप शामिल हैं। पाठ्यचर्या को क्रिया एवं अनुभव के रूप में समझा जा सकता है। यह अर्जित ज्ञान या संग्रहित तथ्य नहीं है। कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, क्रीड़ास्थल और विद्यालय के प्रांगण में प्राप्त किये जाने वाले समस्त अनुभव को यह अपने आँचल में समेट लेता है। इसके साथ ही पाठ्यचर्या वैयक्तिक एवं सामाजिक क्षेत्रों के समस्त उद्योगों, व्यवसायों, कौशलों एवं अभिवृत्तियों को भी अपनी परिधि में रख लेती है।

3.3.1 पाठ्यचर्या के उद्देश्य

वाणिज्य के पाठ्यचर्या का उद्देश्य छात्रों को वाणिज्य का विस्तृत प्रशिक्षण प्रदान करना है। इसके लिए विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं के लिए एक ही पाठ्यचर्या का निर्धारण करना अनुचित एवं अमनोवैज्ञानिक है। इसीलिए विद्यालय में विभिन्न स्तरों के लिए अलग–अलग पाठ्यचर्या का होना अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न कक्षाओं के लिए अलग–अलग पाठ्यचर्या बनाते समय उन उद्देश्यों को ध्यान में रखना चाहिए जो हमें प्राप्त करने है। एक उत्तम पाठ्यचर्या अपने सभी उद्देश्यों की पूर्ति करता है। एक अच्छे पाठ्यचर्या के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं–

1. छात्रों का बहुमुखी विकास करना।
2. छात्रों की रूचि, योग्यता तथा क्षमताओं आदि का विकास करना।
3. छात्रों के अन्दर प्रजातंत्र की भावना का विकास करना ।
4. छात्रों में सामाजिक गुणों एवं ईमानदारी, सत्यता, सद्भाव आदि का विकास करना ।
5. छात्रों के अंदर जीवन मूल्यों का विकास करना।
6. छात्रों की अर्न्तनिहित शक्तियों का विकास करना ।
7. छात्रों को राष्ट्रभक्त नागरिक के रूप में विकास करना ।
8. छात्रों का विषय विशेषज्ञ के रूप में विकास करना ।
9. छात्रों के अंदर वैज्ञानिक दृष्टि का विकास करना।

10. राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका के निर्वहन हेतु छात्र को तैयार करना ।

3.3.2 प्रचलित पाठ्यचर्या के दोष

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में प्रचलित पाठ्यचर्या का निर्माण ब्रिटिश कालीन उददेश्यों के अनुरूप आज भी काफी हद तक बना हुआ है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इसके अंतर्गत उन सभी विचारों, क्रियाओं, अनुभवो तथा विषयों का अभाव है जो स्वतंत्र भारत के छात्रों को उत्तम नागरिक बना सके। यही कारण है कि इसमें बदलाव की सिफारिश शिक्षाविद्, विद्वान नागरिक एवं समाजसेवी करते रहे हैं। विद्वानों के अनुसार इस पाठ्यचर्या में निम्नलिखित दोष है–

(1) संकुचित आधार– वर्तमान प्रचलित पाठ्यचर्या का निर्माण, छात्र की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, क्षमताओं, समाज की आवश्यकताओं आदि की अवहेलना करते हुए किया गया है। फलतः इसका आधार अत्यन्त संकुचित है।

(2) पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक ज्ञान पर बल– वर्तमान भारतीय पाठ्यचर्या में सैद्धान्तिक एवं पुस्तकीय ज्ञान की भरमार है। सैद्धान्तिक ज्ञान पर बल देने के कारण छात्र व्यवहारिक जीवन की कलाओं को सीखने से वंचित रह जा रहे हैं। इस पुस्तकीय ज्ञान को प्राप्त करके छात्र व्यवहारिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल हो जाते हैं।

(3) विषयों की अधिकता– प्रचलित पाठ्यचर्या का निर्माण विषय केन्द्रित किया गया है। इसके कारण पाठ्यचर्या में आवश्यकता से अधिक विषयों को शामिल कर लिया जाता है। इस कारण विषयों के भारी बोझ से बच्चे हर समय दबे रहते हैं। इन विषयों को एक दूसरे से सहसम्बन्धित करने का प्रयास भी नहीं किया जाता है। फलतः छात्र ज्ञान के समग्र रूप से वंचित रह जाते हैं।

(4) जीवन से जुड़ाव का अभाव– सैद्धान्तिक विषयों की भरमार के कारण पाठ्यचर्या निरस एवं जीवन से दूर हो गये हैं।

(5) व्यक्तिगत भिन्नता को स्थान नहीं– वर्तमान पाठ्यचर्या का निर्माण व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान रखकर नहीं किया गया है। यह प्रत्येक छात्र के लिए एक ही विषयवस्तु प्रस्तुत करता है।

(6) परीक्षा केन्द्रित– वर्तमान समय में प्रचलित पाठ्यचर्या का एकमात्र उद्देश्य बालक को परीक्षा के लिए तैयार करना है। अतः शिक्षक परीक्षा में पूछे जाने वाली विषम सामग्री को बताने तथा छात्र रटने में जुटे रहते हैं। इससे पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य ही गौण हो जाता है।

(7) नैतिक तथा यौन शिक्षा का अभाव– प्रचलित पाठ्यक्रम में यौन तथा नैतिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। परिणाम स्वरूप छात्रों में यौन अपराध तथा चरित्रहीनता दिन प्रतिदिन बढती ही जा रही है।

3.3.3 पाठ्यचर्या सुधार के लिए सुझाव

अब तक आपको वर्तमान पाठ्यचर्या के दोषों के बारे में पला चल गया होगा। इन दोषों के कारण वर्तमान पाठ्यचर्या बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में असफल रहे है। पाठ्यचर्या के इन दोषों/कमियों को दूर करने के लिए अनेक शिक्षा आयोगों/समितियों ने सुझाव दिये। जिसमें कोठारी आयोग का सुझाव महत्वपूर्ण है जो इस प्रकार है–

(1) पाठ्यचर्या को बालक की रूचियों, आवश्यकताओं और अभिवृत्तियों का विकास करना चाहिए।

(2) पाठ्यचर्या का स्वरूप लचीला होना चाहिए।

(3) पाठ्यचर्या को बालक के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करना चाहिए।

(4) पाठ्यचर्या में अवकाश के क्षणों के सदुपयोग का अवसर भी होना चाहिए।

(5) पाठ्यचर्या के द्वारा बालक को सामुदायिक जीवन से समायोजन करने में सहायता मिलनी चाहिए।

(6) पाठ्यचर्या द्वारा छात्रों के जीविकोपार्जन की समस्या का हल प्रस्तुत करना चाहिए।

(7) पाठ्यचर्या का निर्माण इस तरह होना चाहिए कि उसमें विषय ज्ञान की अलग अलग विधा के रूप में

नहीं अपितु आपसी समन्वय के रूप में प्रस्तुत किये जाने चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. अच्छे पाठ्यचर्या के कम से कम पाँच उद्देश्य बताइये।

....

....

....

2. प्रचलित पाठ्यचर्या के किन्हीं दो अवगुणों को बताईये।

....

....

....

3. पाठ्यचर्या सुधार हेतु कम से कम दो सुझाव दीजिए।

....

....

....

3.4 वाणिज्य शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य

वैश्वीकरण के युग में वाणिज्य शिक्षा का आधुनिक समाज में अत्यधिक महत्व है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में इसका महत्व और बढ़ जाता है। वस्तुतः वाणिज्य शिक्षा, शिक्षा का ऐसा कार्यक्रम है जो एक ओर उद्योग धन्धों की व्यावसायिक तैयारी से सम्बन्धित है तो दूसरी तरफ ऐसी वाणिज्यिक सूचनाओं से सम्बन्धित है जो प्रत्येक नागरिक और उपभोक्ता के लिए आर्थिक और वाणिज्यिक वातावरण को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। वाणिज्य शिक्षा के उद्देश्यों को जानने से पूर्व लक्ष्य तथा उद्देश्य का अन्तर समझना आवश्यक है। व्यवहारिक जीवन में प्रायः लक्ष्य तथा उद्देश्य दोनों का एक ही अर्थ लगाया जाता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। अतः आगे बढ़ने से पूर्व दोनों का अंतर समझेंगे।

3.4.1 लक्ष्य का अर्थ

लक्ष्य के अर्थ को समझने के लिए इसकी परिभाषा को जानना जरूरी है। कार्टर वी० गुड के शब्दों में, ''लक्ष्य पूर्व निर्धारित साक्ष्य होता है जो किसी कार्य या क्रिया का मार्गदर्शन करता है।''

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि लक्ष्य एक पूर्व निर्धारित साक्ष्य को इंगित करता है। यह बताता है कि आपको कहाँ तक पहुँचना है। इसके द्वारा कार्य की दिशा और केन्द्र तय होता है। लक्ष्य में दूरदर्शिता होती है साथ ही इसमें आदर्शवादिता भी होती है।

3.4.2 उद्देश्य का अर्थ

जब हम किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं तो लक्ष्य की प्रगति पर हासिल होने वाला पुरस्कार ही उद्देश्य कहलाता है। इसे कार्टर वी० गुड के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है—''उद्देश्य वह मानदण्ड है जिसको छात्र द्वारा विद्यालय क्रिया को पूर्ण करके प्राप्त किया जाता है।'' इसके अर्थ को और

अधिक स्पष्ट करते हुए गुड ने लिखा है कि ''उद्देश्य छात्र के व्यवहार में वह इच्छित परिवर्तन है जो विद्यालय द्वारा पथ–प्रदर्शित अनुभव का परिणाम होता है।'' इस प्रकार शिक्षा की प्रक्रिया में उद्देश्य में व्यवहारिकता अधिक होती है। इसको प्राप्त कराने का दायित्व शिक्षक के कंधों पर होता है।

3.4.3 लक्ष्य तथा उद्देश्य में अन्तर

दोनों का तुलनात्मक अध्ययन निम्नवत् है–

क्र.	लक्ष्य	उददेश्य
1	लक्ष्य का क्षेत्र व्यापक होता है।	उद्देश्य का क्षेत्र सीमित होता है।
2	लक्ष्य एक सामान्य कथन है।	उद्देश्य एक निश्चित कथन है।
3	लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण विद्यालय, कार्यक्रम, समाज तथा राष्ट्र उत्तरायी होता है।	उद्देश्य, लक्ष्य की छोटी–छोटी शाखाएँ होती हैं। अतः इनकी प्राप्ति का दायित्व शिक्षक तथा पाठ विशेष की विषयवस्तु पर होता है।
4	लक्ष्य में आदर्शवादिता होती है। अतः इसे पूर्ण रूप में प्राप्त करना संभव नहीं है। इसकी प्राप्ति हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है।	उद्देश्यों की प्राप्ति संभव है। क्योंकि इनमें व्यावहारिकता होती है। दूसरे शब्दों में उद्देश्य प्राप्यनीय है।
5	लक्ष्य की प्राप्ति में अधिक समय लगता है।	उद्देश्य की प्राप्ति में कम समय लगता है।
6	यह अनिर्दिष्ट होता है।	यह विशिष्ट होता है।
7	यह कक्षाकक्ष की शिक्षण रणनीति को निर्धारित करने में सहायक नहीं है।	यह कक्षाकक्ष की शिक्षण रणनीति को निश्चित करने में सहायक है।
8	यह सीखने वाले को स्पष्ट दिशा निर्देश नहीं प्रदान करता है।	यह सीखने वालों या छात्रों को निश्चित एवं स्पष्ट निर्देश प्रदान करता है

3.5 वाणिज्य शिक्षण के लक्ष्य

एक ऐसे समय में जब विश्व राजनीति को आर्थिक महाशक्तियाँ तय करती हैं। समाज वही सशक्त माना जाता है जो आर्थिक रूप से सशक्त होता है। तब एक अविकसित राष्ट्र जो तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर हो, वहाँ वाणिज्य शिक्षा का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है। सामान्य रूप से वाणिज्य शिक्षा के निम्नलिखित लक्ष्य माने जाते हैं–

1. साधारण चातुर्य का विकास करना।
2. नम्रता एवं सेवा की भावना का विकास करना।
3. कुशल व्यापारी तैयार करना।
4. कुशल श्रमिक तैयार करना।
5. वाणिज्य अभिलेखों के रख रखाव व अंकन हेतु दक्ष एवं समर्पित कार्यालय सहायक तैयार करना।
6. ऐश्वर्ययुक्त जीवन जीने के स्वप्न को साकार करने में मदद करना।
7. देश की आर्थिक स्थिति और समस्याओं से छात्रों को परिचित कराना।
8. समाज में वाणिज्य शिक्षा के प्रसार द्वारा उद्यमिता को बढ़ावा देना एवं राष्ट्रीय आय की वृद्धि में सहायता

करना।

9. वाणिज्य शिक्षा का मुख्य लक्ष्य छात्रों को वाणिज्य सम्बन्धी सिद्धान्तों का व्यावहारिक ज्ञान कराना।
10. वाणिज्य शिक्षा के माध्यम से छात्रों को मितव्ययिता तथा ईमानदारी की शिक्षा प्रदान करना।
11. वाणिज्य शिक्षा के द्वारा छात्रों के अंदर तर्क तथा निर्णय करने की शक्ति का विकास करना।
12. वाणिज्य शिक्षा के माध्यम से छात्रों के अंदर उत्तरदायित्व ग्रहण करने की क्षमता प्रदान करना।
13. वाणिज्य शिक्षा द्वारा छात्रों को आगामी गृहस्थ जीवन को अधिक सुखी बनाने में सहायता करना।
14. छात्रों के अंदर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास करना।
15. छात्रों में आर्थिक नागरिकता के गुणों का विकास करना।।
16. छात्रों को राष्ट्र की औद्योगिक एवं व्यापारिक उन्नति के अभीष्ट उपायों से परिचित कराना।
17. छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना।
18. छात्रों के अंदर आँकड़ों एवं घटनाओं को समीक्षात्मक दृष्टि से विश्वसनीयता की कसौटी पर जाँचने की क्षमता उत्पन्न करना।
19. छात्रों को देश के प्राकृतिक साधनों से परिचित कराकर उनके द्वारा अधिकतम लाभ उठाने की क्षमता उत्पन्न करना ।
20. देश के रहन–सहन के स्तर को उच्च बनाने एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने के लिए छात्रों को तैयार करना।

3.6 वाणिज्य शिक्षण के उद्‍देश्य

शिक्षण के उददेश्यों पर बहुत सारे शिक्षाशास्त्रियों ने अध्ययन किया है एवं अपना मत प्रस्तुत किया है। इनके द्वारा कक्षा शिक्षण के अनेकों उद्‍देश्य बताये गये हैं। इनमें राबर्ट ग्लेसर, बी०एस०ब्लूम आदि का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। वर्तमान समय में शिक्षण के उद्‍देश्यों के निर्धारण में बी०एस०ब्लूम द्वारा बतायी गई पद्धति पूरी दुनिया में मान्य है। इसी के अनुरूप आजकल कक्षा शिक्षण के उद्‍देश्यों का निर्धारण किया जाता है। वस्तुतः कक्षा शिक्षण के उद्‍देश्य वह उद्‍देश्य होते हैं जिनकी प्राप्ति शिक्षणोपरान्त छात्र व्यवहार में परिवर्तन के रूप में अध्यापक चाहता है। दूसरे शब्दों में कहें तो कक्षा शिक्षण का लक्ष्य छात्र व्यवहार में परिमार्जन/परिवर्तन लाना होता है। यह कार्य अध्यापक निर्धारित अवधि में करना चाहता है। यह उद्‍देश्य पूर्व निर्धारित होते हैं। जिसे शिक्षणोपरान्त अध्यापक छात्रों के अंदर व्यवहार परिवर्तन के रूप में देखना चाहता है।

3.6.1 ब्लूम के अनुसार शैक्षिक उद्‍देश्यों का वर्गीकरण

बी०एस०ब्लूम ने शिक्षा के क्षेत्र में अपने मूल्यांकन उपागम के माध्यम से क्रांति उत्पन्न कर दी है। आपने शिक्षण को उद्‍देश्यपरक बनाने के साथ ही मूल्यांकन की कसौटी भी तय की। आपने यह स्पष्ट किया कि शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है जिसमें शैक्षिक उद्‍देश्य, अधिगम अनुभव तथा व्यवहार परिवर्तन निहित है। जो इस प्रकार है–

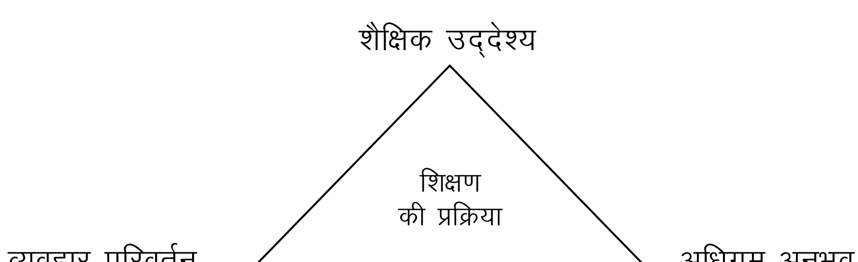

ब्लूम ने शैक्षिक उद्‍देश्यों का वर्गीकरण करते हुए उन्हें व्यवहारिक रूप में लिखने का तरीका बताया। आपका वर्गीकरण मानसिक जीवन के तीन मूलभूत स्तम्भों पर आधारित है–

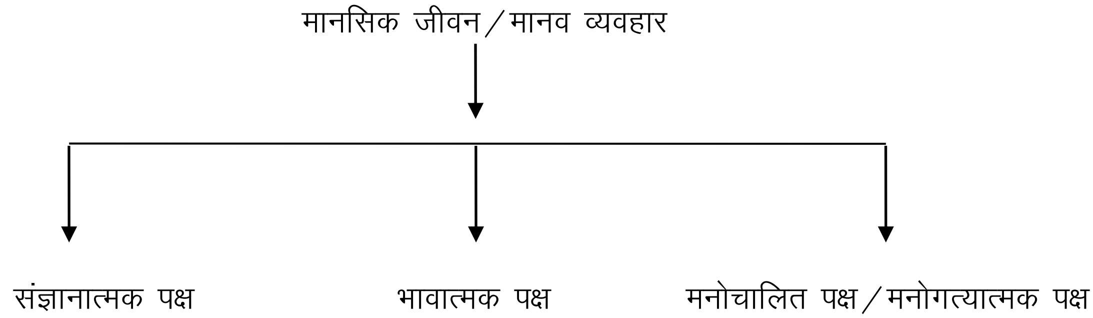

3.6.1.1 संज्ञानात्मक पक्ष :– यह मानवीय व्यवहार का वह पहलू है जिसमें तर्क, चिन्तन, बुद्धिमत्ता व बौद्धिक क्रियाएँ आती हैं। इस कारण हमारे जीवन में इसका महत्व अत्यधिक है। संज्ञानात्मक पक्ष को अध्ययन एवं अध्यापन की दृष्टि से छः भागों में विभाजित किया गया है–

(1) ज्ञान

(2) बोध

(3) प्रयोग

(4) विश्लेषण

(5) संश्लेषण

(6) मूल्यांकन

(क) ज्ञान

इसके अंतर्गत निम्नलिखित बौद्धिक क्रियाएँ आती हैं–

(1) विशिष्टताओं का ज्ञान

(2) पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान

(3) विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान

(4) प्रवृत्तियों एवं क्रमों का ज्ञान

(5) नियमों का ज्ञान

(6) सिद्धान्तों का ज्ञान

(7) संरचनाओं का ज्ञान

(8) श्रेणियों का ज्ञान इत्यादि ।

(ख) बोध

इसके अंतर्गत निम्नलिखित बौद्धिक क्रियाएँ आती हैं–

(1) अनुवाद

(2) व्याख्या

(3) वाह्यावेशन

(4) संक्षेपण

(5) अपने शब्दों में कहना

(6) सतही अन्तर को समझना

(7) तुलना करना

(8) अंतर करना

(9) पर्याय ढूँढना इत्यादि।

(ग) प्रयोग

इसके अंतर्गत सीखे गये तथ्यों सिद्धान्तों आदि का नवीन परिस्थितियों में प्रयोग करना महत्वपूर्ण है। जब छात्र सीखने के पश्चात उस ज्ञान का प्रयोग दी गयी परिस्थितियों में कर लेता है तो उसका बौद्धिक विकास प्रयोग स्तर तक विकसित हुआ माना जाता है।

(घ) विश्लेषण

इसके अंतर्गत तथ्यों का विश्लेषण करने की क्रिया सम्मिलित/आती है। इसमें किसी भी घटना, सिद्धान्त या ज्ञान के कितने स्तर/पक्ष हो सकते हैं। उसको जानने/समझने और वर्गीकरण करके विश्लेषण करने की योग्यता आती है।

(ड़) संश्लेषण

यह बौद्धिकता का वह स्तर है जिसमें विभिन्न अंगों को एक साथ मिलाकर समग्र करने की योग्यता आती है। वस्तुतः इस स्तर पर विभिन्न तथ्यों, गुणों, विशेषताओं के बीच अंतर्निहित समानता देखने की क्षमता आती है।

(च) मूल्यांकन

यह निर्धारित उद्देश्यों के आलोक में मूल्य का अंकन करने की योग्यता से सम्बन्धित है। इस स्तर पर वांछनीयता या अवांछनीयता का निर्णय सम्मिलित है।

3.6.1.2 भावात्मक पक्ष

मानव व्यवहार का यह पक्ष भावनात्मक विकास से जुड़ा हुआ है। मनुष्य का व्यवहार मानवीय रहे और वह सामाजिक प्राणी के अनुरूप व्यवहार करें इसमें उसका भावनात्मक पक्ष महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसको निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा गया है–

(1) स्वीकार करना/आग्रहण करना

(2) प्रतिक्रिया

(3) अनुमूल्यन

(4) संगठन

(5) स्वभावीकरण

3.6.1.3 मनोचालित पक्ष

मनोचालक पक्ष का सम्बन्ध मांसपेशियों के विकास तथा प्रयोग एवं शारीरिक क्रियाओं के समन्वय की योग्यता से है। मनोचालक पक्ष को निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत किया गया है–

(1) प्रत्यक्षीकरण

(2) मनोस्थिति

(3) निर्देशित प्रतिक्रिया

(4) कार्यकौशल

(5) जटिल वाहय व्यवहार

3.7 वाणिज्य शिक्षण के शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप कार्यात्मक क्रियाएँ

(1) ज्ञान उद्देश्य

इस स्तर पर छात्र–

(क) तथ्यों, पदों, अवधारणाओं या संकल्पनाओं सिद्धान्तों प्रवृत्तियों आदि का प्रत्यास्मरण कर सकेगा।

(ख) तथ्यों, पदों, अवधारणाओं, सिद्धातों, प्रवृत्तियों आदि की पहचान कर सकेगा।

(2) बोध उद्देश्य

इस स्तर पर छात्र–

(i). विभेदीकरण कर सकेगा।
(ii). वर्गीकरण कर सकेगा।
(iii). तुलना कर सकेगा।
(iv). सम्बन्ध की पहचान कर सकेगा।
(v). उदाहरण दे सकेगा।
(vi). अशुद्धियों को दूर कर सकेगा।
(vii). संक्षेपण कर सकेगा।
(viii). व्याख्या कर सकेगा।
(ix). अनुवाद कर सकेगा।

(3) प्रयोग उद्देश्य

इस स्तर पर छात्र–

(i) समस्या का विश्लेषण कर सकेगा।

(ii) परिस्थिति के अनुरूप सीखें गये ज्ञान व कौशल का प्रयोग कर सकेगा।

(iii) समस्या समाधान के लिए सर्वोत्तम ढंग का चयन कर सकेगा।

(iv) परिणाम के आधार भविष्यवाणी कर सकेगा।

(4) विश्लेषण उद्देश्य

इस स्तर पर छात्र–

(i) तथ्यों को तत्वों में विभाजित कर सकेगा।

(ii) निष्कर्ष निकाल सकेगा।

(iii) भेद कर सकेगा।

(iv) वर्गीकरण कर सकेगा।

(v) अलग कर सकेगा।

(5) संश्लेषण उद्देश्य

इस स्तर पर छात्र–

(i) व्यवस्थित कर सकेगा।

(ii) पूर्व कथन कर सकेगा।

(iii) सामान्यीकरण कर सकेगा।

(vi) आपसी सम्बन्ध खोज सकेगा।

(6) मूल्यांकन उद्देश्य

इस स्तर पर छात्र–

(i) निर्णय ले सकेगा।

(ii) आलोचना कर सकेगा।

(iii) समालोचना कर सकेगा।

(iv) अपने तर्कों व तथ्यों का सप्रमाण बचाव कर सकेगा।

(v) मूल्यांकन कर सकेगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. वाणिज्य शिक्षा के उद्देश्यों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

....
....
....

5. बी० एस० ब्लूम के अनुसार शिक्षा के तीन ध्रुव कौन–कौन से हैं?

....
....

3.8 सारांश

आज के भौतिकवादी युग में प्रत्येक व्यक्ति अच्छा जीवन यापन करना चाहता है। यह तभी संभव है जब राष्ट्र समृद्ध हो। राष्ट्र को समृद्ध बनाने हेतु वाणिज्य शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार आवश्यक है जिससे ऐसे नागरिक तैयार हो सकें जो व्यापार के माध्यम से स्वावलम्बी व समृद्ध राष्ट्र का निर्माण कर सके। इस खण्ड में पाठ्यचर्या के उद्देश्य, दोष एवं सुधार हेतु सुझावों पर भी चर्चा की गयी है। इसी खण्ड में वाणिज्य शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके अंतर्गत बी०एस० ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण, उनके वर्गीकरण व कार्यात्मक क्रियाओं पर भी चर्चा की गई है ताकि एक अध्यापक कक्षा शिक्षण के उद्देश्यों, शिक्षण विधियों व मूल्यांकन के तरीकों को जानकर उनका प्रयोग करते हुए अधिकाधिक वांछित परिणाम प्राप्त कर सके। वर्तमान खण्ड शिक्षक की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी व उसकी कार्यकुशलता को बढ़ाने वाला है। एक शिक्षक को तभी निपुण माना जाता है जब वह शैक्षिक उद्देश्यों के आलोक में छात्र व्यवहार में कार्यसूचक क्रियाओं के अनुरूप वांछित परिवर्तन कर पाता है। इस खण्ड में शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण व कार्यात्मक क्रियाओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

3.9 अभ्यास के कार्य

1. देश में वाणिज्य शिक्षा के प्रचलित पाठ्यचर्या के दोष व उसमें सुधार के उपाय बताइये।
2. देश में वाणिज्य शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

3. ब्लूम के अनुसार ज्ञानात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण करते हुए विवेचना कीजिए।

4. ज्ञानात्मक पक्ष के शिक्षण उद्देश्यों पर आधारित कार्यात्मक क्रियाओं की सूची बनाइये।

5. देश में वाणिज्य शिक्षा के विस्तार की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालिए।

3.10. चर्चा के बिन्दु

1. अपने अध्यापक के साथ प्रचलित पाठ्यचर्या के दोषो पर चर्चा कीजिए।

2. अध्यापक के साथ पाठ्यचर्या में सुधार के उपायों पर चर्चा कीजिए।

3. बी०एस०ब्लूम० के शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण का शैक्षिक दृष्टि से महत्व पर चर्चा कीजिए।

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अच्छे पाठ्यचर्या के उद्देश्य निम्न हैं–

   (क) छात्र का बहुमुखी विकास करना।

   (ख) मानवीय एवं जीवन मूल्यों का विकास करना।

   (ग) वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना।

   (घ) विषय में निष्णात बनाना।

   (ड़) राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन हेतु तैयार करना।

2. प्रचलित पाठ्यचर्या के दो अवगुण निम्न हैं –

   (क) पुस्तकीय ज्ञान पर बल

   (ख) जीवन से जुड़ाव का अभाव

3. पाठ्यचर्या सुधार हेतु सुझाव निम्नलिखित हैं –

   (क) पाठ्यचर्या का स्वरूप लचीला होना चाहिए।

   (ख) पाठ्यचर्या के द्वारा अधिक से अधिक अनुभव अर्जित करने का अवसर उपलब्ध होना चाहिए।

4. वाणिज्य शिक्षा का उद्देश्य कक्षा– शिक्षण के माध्यम से छात्र के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। जिससे भविष्य में अच्छे व्यवसायी, उद्यमी व राष्ट्रभक्त तथा आर्थिक चिन्तक तैयार किये जा सकें। फलस्वरूप राष्ट्र की समृद्धि एवं आर्थिक विकास को नया आयाम दिया जा सके।

5. शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यचर्या।

3.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पाठक, पी0डी0 एवं त्यागी जी0एस0डी0 (1994), 'सफल शिक्षण कला' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

2. शर्मा, आर0ए0 (2001), 'शिक्षण तकनीकी' सूर्या पब्लिकेशन्स मेरठ।

3. गुप्ता, एस0पी0 एवं गुप्ता, अलका (2001), 'आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन' शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

4. त्यागी, गुरसरन दास (2012), 'वाणिज्य शिक्षण' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

खण्ड 02 : वाणिज्य शिक्षण की रणनीतियाँ –I

खण्ड परिचय

शिक्षण कार्य का मुख्य उद्देश्य छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। शिक्षणोपरान्त अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन के लिए शिक्षण के समय अनेक व्यूह रचनायें की जाती हैं। जिससे शिक्षण उद्देश्य पूर्ण हो सके। अधिगम उद्देश्य पाठ्यवस्तु– विश्लेषण शिक्षण के लिए आधार प्रस्तुत करते हैं। शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रभावशाली व्यूह रचनाएँ या रणनीतियों एवं युक्तियों का चयन करना आवश्यक होता है। कदाचित इसके अभाव में शिक्षण कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्ति की संभावना क्षीण रहती है। वर्तमान खण्ड में हम इसके अन्तर्गत वाणिज्य शिक्षण की संकल्पना, व्याख्या (एक्सपोजीसन) व खोज विधि द्वारा सीखना, समूह कार्य एवं सहयोगात्मक रणनीति इत्यादि का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड को तीन भागों में बाँटा गया है। जिसका विवरण निम्नानुसार है–

इकाई– 04 : इस इकाई के अन्तर्गत हम वाणिज्य शिक्षा का अर्थ, परिभाषा एवं उसकी प्रकृति का अध्ययन करेंगे।

इकाई– 05 : इस इकाई के अन्तर्गत व्याख्या (एक्सपोजीसन) विधि द्वारा सीखना, खोज विधि द्वारा सीखना, खोज विधि के गुण, खोज विधि के अवगुण आदि पर विस्तृत चर्चा की गई है।

इकाई– 06 : इस इकाई में वाणिज्य में समूह अधिगम, समूह अधिगम के गुण, समूह अधिगम विधि के अवगुण, समूह कार्य या सहयोगात्मक व्यूह रचना रणनीतियों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

इकाई–04 : वाणिज्य शिक्षण के सम्प्रत्यय

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 इकाई के उद्‌देश्य
4.3 वाणिज्य शिक्षण का अर्थ
4.4 वाणिज्य शिक्षण की परिभाषा
4.5 वाणिज्य शिक्षण की प्रकृति
4.6 सारांश
4.7 अभ्यास के प्रश्न
4.8 चर्चा के बिन्दु
4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

विश्व के प्रत्येक देश में आर्थिक विकास की होड़ लगी हुई है। आजकल वही राष्ट्र शक्तिशाली माना जाता है जो आर्थिक रूप से मजबूत होता है। कोई राष्ट्र आर्थिक रूप से तभी सशक्त हो सकता है जब वहाँ पर उद्यमिता, व्यापार, एवं वाणिज्य को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त प्रचार–प्रसार हो। भारत एक विकासशील देश है, जो तीव्र विकास हेतु निरन्तर प्रयासरत है। सरकार का प्रयास है कि शीघ्रातिशीघ्र राष्ट्र को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में लाया जा सके और यहाँ के निवासियों की प्रति व्यक्ति आय एवं जीवन स्तर में सुधार किया जा सकें। इस हेतु वित्तीय साक्षरता की स्थिति में सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। दुर्भाग्य से वित्तीय साक्षरता के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से भारत की स्थिति दयनीय है। उद्योग– धंधो, व्यापार व वाणिज्य की स्थिति भी खराब है। अगर राष्ट्र को विकसित राष्ट्र बनाना है तो वित्तीय साक्षरता को बढ़ावा देना होगा। यह कार्य वाणिज्यशास्त्र के पठन–पाठन को बढ़ावा देकर ही सम्भव है। वाणिज्य विषय का अध्ययन अन्य विषयों की अपेक्षा अत्यन्त चुनैतिपूर्ण कार्य है। इसका कारण है इस विषय का व्यक्ति के जन–जीवन से सीधा जुड़ाव है। यहाँ सूचना एवं घटनायें बहुत तेजी के साथ बदलती हैं। ऐसे में अध्ययन के लिए वाणिज्य शिक्षण के आशय और शिक्षण की आधुनिकतम् विधियों जैसे– प्रदर्शन–विधि, अन्वेषण/खोज विधि तथा समूह कार्य इत्यादि का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। देश में व्यवसाय का वातावरण सृजन करने में वाणिज्य शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। वाणिज्य शिक्षा राष्ट्र रूपी शरीर में रक्त शिराओं के रूप में कार्य करती है। वाणिज्य शिक्षा देश में आर्थिक नागरिकता का विकास करती है। इसके द्वारा ऐसे जागरूक को तैयार किया जाता है जो आर्थिक हितों को भलीभाँति समझते हैं। वाणिज्य शिक्षा प्राप्त व्यक्ति स्वाभाविक रूप से उद्यमिता और व्यावसायिक रूझान रखता है। इससे समाज और राष्ट्र में व्यावसायिक वातावरण का सृजन होता है। इससे व्यावसायिक गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है। जब देश में व्यावसायिक गतिविधियाँ बढ़ती है तब देश में समृद्धि आती है। भारत मे वाणिज्य शिक्षा का स्वरूप मूलतः अनौपचारिक ही रहा है। भारत में व्यावसायिक शिक्षा मूलतः परिवार के वरिष्ठ सदस्यों से परम्परागत रूप से प्राप्त होती रही है। भारत में कुछ समुदाय परम्परागत रूप से व्यावसायिक समुदाय के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जैसे– मारवाडी समाज एवं जैन समाज इत्यादि। ये लोग परम्परागत रूप से व्यवसाय या व्यापार करते रहे हैं। यही कारण है कि इनमें व्यवसाय की समझ और कौशल दूसरों की अपेक्षा अधिक होती है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि व्यवसाय के गुण की शिक्षा इनको पीढ़ी दर पीढ़ी परिवार से प्राप्त होती है। देश में अगर व्यावसायिक वातावरण का सृजन करना है तो नीति नियंताओं को वाणिज्य शिक्षा को प्रोत्साहन प्रदान करना होगा। हमें एक ऐसा पाठ्यचर्या तैयार करना होगा जिसमें स्ट्रीट वेंडर (पटरी व्यवसाय) की औपचारिक शिक्षा से लेकर उच्च स्तरीय उद्यमिता कौशल के विकास की शिक्षा का द्वार प्रत्येक नागरिक हेतु खोलना होगा। जब देश में वाणिज्य शिक्षा को प्राथमिक स्तर से बढ़ावा दिया जायेगा तभी प्रत्येक नागरिक में उद्धामशिलता को बढ़ावा

देने वाली शिक्षा का प्रसार हो सकेगा। अगर भारत को विकसित राष्ट्र बनना है तो वाणिज्य शिक्षा को बढ़ावा देना ही होगा।

4.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. वाणिज्य शिक्षा के अभिप्राय बता सकेंगे।
2. वाणिज्य शिक्षा को परिभाषित कर सकेंगे।
3. वाणिज्य शिक्षण की प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे।

4.3 वाणिज्य शिक्षण का अर्थ

पिछले खण्ड में हम लोग वाणिज्य का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषता के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। शिक्षण व्यक्ति की अर्न्तनिहित शक्तियों का सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वागींण विकास करती है। वाणिज्य में व्यापार एवं उसकी सहायक क्रियायें सम्मिलित होती हैं। अतः वाणिज्य शिक्षा व्यापार एवं उसकी सहायक क्रियाओं को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने के योग्य नागरिकों का निर्माण करती है। दूसरे शब्दों में वाणिज्य शिक्षण कुशल उद्यमी, सफल व्यापारी, उत्कृष्ट प्रबंधक, कार्मिक आदि को निर्मित करने वाली विद्या है ताकि देश की आवश्यकताओं के अनुरूप वाणिज्य से जुड़ी क्रियाओं के सफल सम्पादन हेतु कुशल नागरिक तैयार किये जा सकें।

वाणिज्य मूलतः व्यापारिक संस्थाओं एवं विभिन्न आर्थिक निकायों के मध्य एक गतिविधि है। परंपरागत रूप से वाणिज्य का अर्थ व्यवसायों अथवा संस्थाओं के बीच वस्तुओं, सेवाओं या किसी मूल्य का आपस में आदान– प्रदान करने की क्रिया होती है। ग्राहक द्वारा किसी एक वस्तु को खरीदना या बेचना लेनदेन कहलाता है। यही लेन देन जब दो व्यवासायियों के बीच बड़े पैमाने पर होता है तो व्यापार कहलाता है। वाणिज्य की क्रिया दो राष्ट्रों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी किया जाता है। वाणिज्य का प्रबंधन जब अच्छे तरीके से किया जाता है तो वाणिज्यिक गतिविधि देश में जीवन स्तर में सुधार लाती है। वर्तमान समय में वाणिज्य अपने आप मे एक उपसमूह का जाल निर्मित करता है। इसमें कम्पनियों का जटिल जाल सामीलित है, जो बाजार में कम उत्पादन लागत पर तैयार उत्पादों एवं सेवाओं का वितरण कर अपने मुनाफे को अधिकतम करने पर बल देते है।

4.4 वाणिज्य शिक्षण की परिभाषा

वाणिज्य शिक्षण एक तरफ व्यावसायिक प्रकृति को निरूपित करती है जो विशेषतः लिपिकीय, सचिवीय, अभिलेखन और विक्रय जैसे चार प्रकार के व्यवसायों को सामिल करती हैं तो दूसरी तरफ यह वाणिज्य की जनसाधारण के लिए उपयुक्त सामान्य प्रकृति को समाहित करती है। वाणिज्य शिक्षण के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए प्रमुख विद्वानों की परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक है। जो इस प्रकार है–

1. हेरिक के शब्दों में, ''वाणिज्य शिक्षण शिक्षण का वह रूप है जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से व्यापारी को उसके कार्यों के लिए तैयार करें।''
2. लोमेक्स के अनुसार, ''वाणिज्य शिक्षण मुख्यतः आर्थिक शिक्षण का कार्यक्रम है जो धन की प्राप्ति, संचय तथा उसको व्यय करने से सम्बन्धित है।''
3. निकोलस के मतानुसार, ''वाणिज्य शिक्षण एक प्रकार का प्रशिक्षण है जो अपने प्राथमिक उद्देश्यों के रूप में व्यक्तियों को व्यावसायिक धन्धों में प्रवेश हेतु तैयार करता है।''
4. स्टीफेन्स के शब्दो में, "वाणिज्य वस्तुओं के आदान – प्रदान से सम्बधित है। इसके अन्तर्गत वस्तुओं के क्रय–विक्रय जो कि किसी भी स्तर पर हो या कच्चे माल से निर्मित वस्तु तक की सभी प्रगतियाँ आ जाती हैं, जब तक कि वह उपभोक्ता के हाथों मे न पहुँच जाये। इसके अन्तर्गत केवल क्रय विक्रय तथा वस्तुओं का रख–रखाव ही नहीं आता वरन अनेक सेवाएँ यथा– पूँजी, बीमा, भन्डारण, परिवहन आदि भी

आते है।''

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि वाणिज्य को दो या दो से अधिक संस्थाओं के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान प्रदान के रूप में परिभाषित किया जाता है। वाणिज्य व्यवसायों के बीच या उपभोक्ताओं के बीच हो सकता है। वाणिज्य में मूल्य का आदान–प्रदान सम्मिलित होता है और इसमें सम्मिलित सभी पक्षों को लाभ होता है। वाणिज्य हमारे समाज के लिए निम्न पाँच तरीकों से लाभप्रद हैं–

1. वाणिज्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
2. वाणिज्य उपादक को उपभोक्ता से जोड़ता है।
3. वाणिज्य से जीवन स्तर ऊंचा उठता है।
4. वाणिज्य से रोजगार के नये अवसर पैदा होते हैं।
5. वाणिज्य से लाभ का सृजन होता है।

उपर्युक्त शिक्षाविदों के मतों के अध्ययन से पता चलता है कि वाणिज्य एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है। इसमें व्यापार एवं व्यापार की सहायक क्रियायें जैसे– बैकिंग, बीमा, परिवहन, सन्देशवाहन के साधन इत्यादि सम्मिलित होते है। इस हेतु व्यापार को सम्भव बनाने वाली सभी क्रियाओं का अलग–अलग अध्ययन करने के स्थान पर समवेत रूप में वाणिज्य में समाहित कर दिया जाता है। वस्तुतः वाणिज्य शब्द के अन्तर्गत हम केवल क्रय–विक्रय को ही सम्मिलित नहीं करते वरन् व्यापार के अन्य सहायक साधनों को भी सम्मिलित करते हैं जो व्यापार की प्रगति में सहायता करते हैं।

4.5 वाणिज्य शिक्षण की प्रकृति

वाणिज्य के वर्तमान स्वरूप और इसके प्रारम्भिक स्वरूप का अध्ययन किया जाये तो पायेंगे कि आदि से आज तक इसमें काफी परिवर्तन आ चुका है। अतः वाणिज्य शिक्षण की प्रकृति को समझने के लिए विश्व तथा भारत में इसके विकास की दिशा को समझना आवश्यक है। संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का पहला देश है जहाँ वाणिज्य शिक्षा का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इसके सकारात्मक परिणाम को देखते हुए धीरे–धीरे विश्वभर में वाणिज्य शिक्षा का महत्व बढ़ने लगा। सन् 1600 के आस–पास विश्व के अधिकांश देशो के पाठ्यचर्या में बहीखाता एवं व्यवहारिक गणित को सम्मिलित किया गया। अमेरिका में गृह–युद्ध के बाद संख्याता की बढ़ती माँग को पूर्ण करने हेतु व्यावसायिक शिक्षा के लिए अनेक विद्यालय खोले गये। इन विद्यालयों में आशुलिपि, टंकण, व्यावसायिक गणित एवं बहीखाता जैसे विषयों का शिक्षण प्रारंभ हुआ। वाणिज्य शिक्षा के बढ़ते महत्व से भारत भी अछूता नहीं रहा। देश स्वतंत्र होने के पश्चात यहाँ भी आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ी। देश में बड़े, मध्यम एवं लघुआकार के उद्योगों और व्यापार का बड़े पैमाने पर विकास हुआ। भारत में वर्ष 1998 में 'औद्योगिक प्रशासन एवं व्यावसायिक प्रबन्धन पर एक संयुक्त कमेटी का गठन हुआ। इसने देश में वाणिज्य शिक्षा को बढ़ावा देने का कार्य किया। वर्ष 1949 मे अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद ने प्रबंधन कार्यकारी के महत्व पर बल दिया। इसकी संस्तुतियों के आधार पर 1954 ई० में व्यावसायिक प्रबन्ध पाठ्यचर्या को चुनिन्दा संस्थाओं में चालू किया गया। विश्वविद्यालय स्तर पर वाणिज्य शिक्षा की शुरूआत अर्थशास्त्र विषय के एक अंग के रूप में हुई। आगे चलकर वाणिज्यशास्त्र एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। वाणिज्य शिक्षण की प्रकृति की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है–

1. वाणिज्य शिक्षण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से व्यापारियों को विभिन्न क्रियाओ को करने के योग्य बनाती है।
2. वाणिज्य शिक्षण का प्रमुख कार्य व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र का आर्थिक उन्नयन एवं कल्याण करना है।
3. इसका कार्य व्यक्तियों में उन योग्यताओं का विकास करना है जो विभिन्न प्रकार के धन्धों या व्यवसायों में कार्य करने की क्षमता में बृद्धि करते हैं।
4. वाणिज्य शिक्षण उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं को जोड़ने में एक सेतु का कार्य करती है।
5. वाणिज्य शिक्षण आर्थिक तत्वों से सम्बन्धित मानवीय व्यवहार का अध्ययन करती है।
6. वाणिज्य शिक्षण द्वारा उपभोक्ता सूचना, वैयक्तिक वाणिज्यिक मामले तथा वाणिज्य से सम्बन्धित क्षमता

का विकास किया जाता है।

7. वाणिज्य शिक्षण देश में आर्थिक नागरिकता के गुणों का विकास करने में सहायक होती है।

8. वाणिज्य शिक्षण द्वारा हम पुस्तपालन, व्यावसायिक गणित, टंकण, आशुलिपि, बैंकिग, बीमा, परिवहन, संचार आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

9. वाणिज्य शिक्षण नागरिकों को अच्छा उपभोक्ता एवं उत्पादक बनने में सहायता प्रदान करती है।

10. यह शिक्षण धनोपार्जन, संचयन तथा व्यय करने से सम्बन्धित है।

11. वाणिज्य शिक्षण अर्थव्यवस्था एवं व्यावसाय से सम्बन्धित समस्याओं को समझने तथा उसका समाधान ढूढ़ने में सहायक होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. वाणिज्य शिक्षण से क्या अभिप्राय है?

....

....

....

2. लोमेक्स ने वाणिज्य शिक्षण की क्या परिभाषा दी है?

....

....

....

3. वाणिज्य शिक्षण की दो विशेषताएं बताइये।

....

....

....

4.6 सारांश

किसी भी राष्ट्र की शिक्षण योजना का आधार उसका सामाजिक एवं आर्थिक ढ़ाँचा होता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। इस कारण यहाँ वाणिज्य शिक्षण का विकास विलम्ब से हुआ। यह सर्वविदित तथ्य है कि किसी भी राष्ट्र के उत्थान एवं पतन में उस देश की वाणिज्यिक स्थिति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वैश्वीकरण के युग में राष्ट्रों की सीमाएँ अर्थहीन हो गयी हैं। आज के युग में कोई भी राष्ट्र एक बंद राष्ट्र के रूप में विकास नहीं कर सकता है। परस्पर निर्भरता आज के युग की सच्चाई है। वाणिज्य के संदर्भ में यह बात प्रमुख रूप से लागू होती है। अतः आज के परिवेश में वाणिज्य शिक्षण का महत्व अत्यन्त बढ़ गया है। संक्षेप में कहें तो वाणिज्य शिक्षण, शैक्षिक प्रक्रिया का वह स्वरूप है जिसके द्वारा छात्रों को वाणिज्य से सम्बन्धित कार्यों के लिए तैयार किया जाता है। यह छात्रों में आर्थिक नागरिकता के गुणों के विकास में सहायक होता है। यह व्यावसायिक कुशलता के विकास में भी सहायता देती है।

4.7 अभ्यास के प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षण को परिभाषित कीजिए।
2. वाणिज्य शिक्षण की प्रकृति पर सविस्तार प्रकाश डालिए।
3. भारत में वाणिज्य शिक्षण के विकास पर प्रकाश डालिए।

4.8 चर्चा के बिन्दु

1. वाणिज्य शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्व क्या है? चर्चा कीजिए।
2. भविष्य वाणिज्य शिक्षण की दिशा पर चर्चा कीजिए।
3. वाणिज्य शिक्षण के सम्प्रत्यय पर चर्चा कीजिए।

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वाणिज्य शिक्षण व्यक्ति को वाणिज्य से सम्बन्धित भूमिकाओं को सफलतापूर्वक सम्पादित करने हेतु आवश्यक गुण, अनुभव, कौशल एवं अभिवृत्ति विकसित करने के लिए अनुकूल एवं उपयुक्त वातावरण का सृजन करती है।
2. लोमेक्स के शब्दों में, ''वाणिज्य शिक्षण मुख्यतः आर्थिक शिक्षण का कार्यक्रम है जो धन की प्राप्ति, संचय तथा उसको व्यय करने से सम्बन्धित है।''
3. वाणिज्य शिक्षण की दो विशेषताएँ निम्नवत है—

   (क) वाणिज्य शिक्षण व्यक्ति के अन्दर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करती है। इससे वह आर्थिक समस्याओं के समाधान और उचित निर्णय लेने के योग्य बनता है।

   (ख) वाणिज्य शिक्षण राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की आर्थिक और व्यावसायिक चुनौतियों, मुद्‌दों तथा समस्याओं को समझने एवं उनका समाधान करने के योग्य बनाती है।

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. त्यागी, गुरसरन दास (2012),' वाणिज्य शिक्षण,' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज (2017),' वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ— 250001
3. माथुर, एस0एस0, (1994),' शिक्षण कला,' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ— 370001
5. सिंह, आर0पी0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'पेडागागी आफ स्कूल सब्जेक्ट कामर्स,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ— 370001

इकाई 05 : व्याख्यात्मक (एक्सपोजीसन) विधि एवं खोज विधि द्वारा सीखना

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 इकाई के उद्देश्य

5.3 व्याख्यात्मक विधि द्वारा सीखना

5.3.1 व्याख्यात्मक विधि की विशेषताएं

5.3.2 व्याख्यात्मक विधि की सीमाएं

5.3.3 व्याख्यात्मक विधि की प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव

5.4 अन्वेषण विधि द्वारा सीखना

5.4.1 अन्वेषण विधि के गुण

5.4.2 अन्वेषण विधि के दोष

5.4.3 अन्वेषण विधि के प्रयोग हेतु सुझाव

5.5 सारांश

5.6 अभ्यास के प्रश्न

5.7 चर्चा के बिन्दु

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

जॉन कॉमेनियस, रूसो, पेस्टालॉजी, जान डी0वी0, मरिया मान्टेन्सरी, फ्रोबेल, हरबर्टस्पेन्सर, क्लिपैट्रिक आदि महान शिक्षणशास्त्रियों ने सीखने की कई विधियों का विकास किया है। वर्तमान समय में प्रचलित शिक्षण विधियों में अधिकांश आप लोगों द्वारा ही विकसित और मान्य है। वर्तमान समय में प्रचलित व्याख्यात्मक विधि और अन्वेषण विधि ऐसी ही शिक्षण विधियाँ हैं। इन विधियों का वाणिज्य शिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान है। कक्षा–शिक्षण में इन विधियों के प्रयोग से कक्षा जीवंत हो गयी है। अधिगम अनुभव सकारात्मक हो गये है। छात्रों की सहभागिता, रूचि एवं धारणा के स्तर में बृद्धि हुई है। प्राचीन काल की शिक्षण विधियों एवं वर्तमान समय में प्रचलित शिक्षण विधियों में मौलिक अन्तर है। प्राचीनकाल में शिक्षक शिक्षण व्यवस्था का केन्द्र हुआ करता था। शिक्षक जो कुछ सिखलाता था छात्र उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता था। शिक्षण के समय छात्र की रूचि, क्षमता आदि का ध्यान नहीं रखा जाता था। वर्तमान समय में मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रचलन बढ़ गया है। अब शिक्षण व्यवस्था छात्र केन्द्रित हो गयी है। आज का शिक्षण कार्य छात्र की रूचि, क्षमता एवं सिखाने की गति को ध्यान रखकर किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान के विकास ने शिक्षण अधिगम के क्षेत्र में नवीन क्रांति ला दी है। अब शिक्षक मार्गदर्शक एवं सलाहकार की भूमिका में आ गया है। छात्र सीखने का केन्द्र है। अतः उसकी रूचि, रूझान एवं सीखने की क्षमता महत्वपूर्ण हो गयी है। अब शिक्षण की ऐसी विधियों पर बल दिया जा रहा है जिसमें छात्र अपनी रूचि, गति एवं प्रेरणा से कार्य करते हुए सीख सकें। इन शिक्षण विधियों के फलस्वरूप सीखने में छात्र की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। अब छात्र को सीखने हेतु स्वयं तत्पर रहना पड़ता है। इन शिक्षण विधियों के बारे में आगे हम विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगें।

5.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. व्याख्यात्मक विधि का प्रयोग कर सकेंगें।
2. व्याख्यात्मक विधि की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
3. व्याख्यात्मक विधि की सीमायें चिन्हित कर सकेंगे।
4. अन्वेषण विधि का प्रयोग कर सकेंगें।
5. अन्वेषण विधि का महत्व बता सकेंगे।

5.3 व्याख्यात्मक विधि (Exposition Method) द्वारा सीखना

व्याख्यात्मक विधि, शिक्षण का एक पारंपरिक तरीका है जिसमें शिक्षक कक्षा में मौखिक रूप से विषय–वस्तु को प्रस्तुत करता है। यह विधि विशेषकर माध्यमिक और उच्च स्तर पर व्यापक रूप से प्रयोग की जाती है। शिक्षक, कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विषय को पूर्व में तैयार करके आता है और फिर विद्यार्थियों को समझाने के लिए उसे बोलकर सुनाता है। विद्यार्थी ध्यान से सुनते हुए महत्वपूर्ण बिंदुओं और तथ्यों को अपनी कॉपी में नोट करते हैं। इस दौरान शिक्षक, विद्यार्थियों से प्रश्न भी पूछता रहता है ताकि उनकी समझ को जांचा जा सके। इसे कथन विधि भी कहा जाता है।

5.3.1 व्याख्यात्मक विधि की विशेषताएं

व्याख्यात्मक विधि की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. समय एवं धन की दृष्टि से यह विधि मितव्ययी है।
2. यह विधि तथ्यात्मक जानकारी देने का एक कारगर तरीका है।
3. इस विधि के प्रयोग से छात्रों में श्रवण कौशल विकसित होते हैं।
4. यह विधि किसी विषय की शुरुआत, मध्य और अंत सभी के लिए उपयुक्त है।
5. यह विधि सरल और आसानी से लागू की जा सकती है।

अतः हम कह सकते हैं कि व्याख्यान विधि शिक्षण का एक बहुमुखी तरीका है जो समय और संसाधनों को बचाता है, छात्रों के श्रवण कौशल को विकसित करता है और बड़ी संख्या में छात्रों को प्रभावी ढंग से शिक्षित करने में मदद करता है।

5.3.2 व्याख्यान विधि की सीमाएं

व्याख्यान विधि के कई फायदों के बावजूद, इसकी कुछ सीमाएं भी हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. यह विधि उच्च कक्षाओं के लिए तो उपयुक्त हो सकती है, लेकिन निचली कक्षाओं के लिए यह उतनी प्रभावी नहीं है।
2. व्याख्यान विधि में छात्रों की सक्रिय भागीदारी कम होती है, वे केवल सुनने तक सीमित रह जाते हैं जिससे कक्षा का माहौल उबाऊ हो जाता है।
3. यह विधि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सही नहीं मानी जाती क्योंकि इसमें शिक्षक अधिक सक्रिय होता है और छात्रों को कम महत्व दिया जाता है।
4. व्याख्यान विधि से प्राप्त ज्ञान स्थायी नहीं होता और छात्र जल्दी भूल जाते हैं।
5. यह विधि 'करके सीखने' और 'रुचि के सिद्धांत' के विपरीत है।

अतः हम कह सकते हैं कि व्याख्यान विधि में छात्रों की सक्रिय भागीदारी की कमी, ज्ञान का अस्थायी होना और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कमजोर होना इसके प्रमुख दोष हैं।

5.3.3 व्याख्यान विधि को प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव

यद्यपि यह विधि उपयोगी है फिर भी इसमें अनेक कमियाँ दिखायी देती हैं। व्याख्यान विधि को अधिक

प्रभावी बनाने के लिए कुछ सुझावों का पालन किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं–

1. शिक्षक को व्याख्यान के दौरान समय–समय पर छात्रों से प्रश्न पूछने चाहिए ताकि वे सक्रिय रहें और अपनी समझ को जांच सकें।
2. रोचक उदाहरणों, दृष्टांतों और दृश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग करके व्याख्यान को अधिक रोचक बनाया जा सकता है।
3. शिक्षक को विषय पर पूर्ण पकड़ रखनी चाहिए और सरल भाषा में अपनी बात को स्पष्ट करना चाहिए।
4. कक्षा में एक जीवंत वातावरण बनाए रखना भी महत्वपूर्ण है।
5. व्याख्यान छात्रों की उम्र, रुचि और समझ के स्तर के अनुरूप होना चाहिए।

अतः हम कह सकते हैं कि व्याख्यान विधि को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक को छात्रों की सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा देना, रोचक तरीकों से पढ़ाना, विषय पर अच्छी पकड़ रखना, सरल भाषा का प्रयोग करना और छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।

5.4 अन्वषण विधि द्वारा सीखना

Discovery शब्द 15वीं शताब्दी के आस पास ज्यादा प्रचलन में आया। यह लैटिन भाषा के शब्द Discooperire से बना है। जिसका अर्थ होता है– 'खुलासा करना' या 'उजागर करना' मूल शब्द Discover है जिसमें 'Y' प्रत्यय लगाने से Discovery बनता है जो कि संज्ञा है। वस्तुतः यह स्वयं खोज करने या अपने आप सीखने की विधि है। इस विधि में बालक को तथ्यों का अध्ययन, अवलोकन और निरीक्षण करने का अवसर दिया जाता है। इसमें छात्रों से आशा की जाती है कि वह स्वयं अपने प्रयास से यंत्रों, पुस्तकों और शिक्षकों की सहायता से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करें, सत्य को मालूम करें और नियम निर्धारित करे। इस विधि में छात्र मौन और निष्क्रिय श्रोता न होकर स्वयं अन्वेषक/आविष्कारक बन जाता है। स्पेन्सर के अनुसार, ''बालकों को जितना कम से कम संभव हो उतना बताया जाये और जितना अधिक से अधिक संभव हो, उतना खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाये।'' जेरोम ब्रूनर को 1960 के दशक में खोज विधि से सीखने की शुरूआत का श्रेय दिया जाता है। जेरोम ब्रूनर के विचार, जान डी०वी० के विचारों का ही विस्तार है। जेरोम ब्रूनर का कहना है कि ''स्वयं से खोज करने का अभ्यास व्यक्ति को इस तरह से जानकारी प्राप्त करना सिखाता है जिससे समस्या समाधान में उस जानकारी को अधिक आसानी से व्यवहार्य बनाया जा सके।'' यह दर्शन पश्चवर्ती काल में खोज विधि से सीखने का आन्दोलन बन गया है। एक अध्ययन के अनुसार ''खोज विधि द्वारा सीखने का कार्य निहित पैटर्न का पता लगाने से लेकर स्पष्टीकरण की व्याख्या और मैनुअल के माध्यम से काम करने से लेकर सिमुलेशन आयोजित करने तक हो सकता है। डिस्कवरी लर्निंग तब हो सकती है जब छात्र को सटीक उत्तर नहीं दिया जाता है बल्कि सामग्री स्वयं उत्तर खोजने के लिए प्रदान की जाती है।'' खोज विधि द्वारा सीखने में निम्नलिखित पदों का प्रयोग किया जाता है–

(1) समस्या का कथन

(2) परिकल्पना निर्माण

(3) तथ्यों का निरीक्षण और सारणीकरण

(4) परिकल्पना का परीक्षण

(5) निष्कर्ष

5.4.1 अन्वेषण विधि के गुण

(1) यह विधि छात्रों में वैज्ञानिक भावना एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करती है।

(2) यह विधि छात्र को अपने प्रयास से 'करके सीखने' का अवसर देती है।

(3) यह विधि छात्र को ज्ञानार्जन की विभिन्न क्रियाओं में संलग्न करके क्रियाशील बनाती है।

(4) यह विधि, तर्क, निर्णय, कल्पना आदि के प्रयोग का अवसर देकर छात्र के मानसिक विकास की प्रक्रिया को तीव्र करती है।

(5) यह विधि छात्रों में स्वाध्याय की आदत का निर्माण करती है।

(6) यह विधि आगमन विधि का अनुसरण करने के कारण छात्र एवं शिक्षक को निकट लाती है।

(7) यह विधि छात्र को ज्ञान की खोज करने की मनःस्थिति में तैयार रखती है।

(8) इस विधि से छात्रों में चिंतन एवं निरीक्षण के गुणों का विकास होता है।

(9) इस विधि द्वारा रटने की गंदी आदत नहीं पड़ती है। इसके द्वारा परिश्रम व करके सीखने के कारण अर्जित ज्ञान स्थायी हो जाता है।

5.4.2 अन्वेषण विधि के दोष

1. यह विधि उच्च कक्षाओं के लिए ज्यादा उपयोगी है।
2. इस विधि के माध्यम से समस्त विषयों को पढ़ाया जाना संभव नहीं है।
3. इस विधि द्वारा सीखने में बहुत अधिक समय लगता है।
4. इस विधि द्वारा सीखने पर सम्पूर्ण पाठ्यचर्या को समय से पूरा कर पाना अत्यन्त कठिन है।
5. यह विधि खर्चीली है।
6. यह विधि साधारण बुद्धिलब्धि वाले छात्रों की अपेक्षा उच्चकोटि की बुद्धिलब्धि वाले छात्रों के लिए ज्यादा उपयोगी है।
7. इस विधि द्वारा छात्रों और शिक्षकों के उपर अत्यधिक कार्यभार बढ़ जाता है।
8. यह विधि छात्र द्वारा मौलिक खोज की आशा करती है जो सर्वथा अनुचित है।

5.4.3 अन्वेषण विधि के प्रयोग हेतु सुझाव

1. इस विधि द्वारा शिक्षण से पूर्व समस्त तैयारी पूर्ण कर लेनी चाहिए।
2. पाठ्यचर्या के महत्वपूर्ण अंशो को ही इस विधि द्वारा पढ़ाना चाहिए।
3. इस विधि का प्रयोग उच्च स्तरीय कक्षाओं में करना चाहिए।
4. इस विधि द्वारा शिक्षण करते समय वास्तविक सामग्री का प्रयोग करना चाहिए।
5. इस हेतु प्रयोगशाला कक्ष समृद्ध होना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. व्याख्यात्मक विधि क्या है? समझाइये।

....

....

....

2. अन्वेषण विधि किसे कहते है? स्पष्ट करें।

....

....

3. अन्वेषण विधि के कौन–कौन से गुण हैं?

....

....

....

5.5 सारांश

यर्थाथवाद के प्रभाव से विश्वभर में कक्षा शिक्षण में प्रत्यक्ष रूप से अनुभव प्रदान करने पर बल दिया जाने लगा है। समस्त संसार के शिक्षाविदों में एक आम सहमति बन चुकी है कि प्रत्यक्ष विधि और अनुभव आधारित अधिगम स्थायी एवं सुगम होता है। फलतः शिक्षण में आगमन विधियों का प्रभाव बढ़ा है। इन विधियों के प्रयोग से कक्षा शिक्षण में न सिर्फ सजीवता आयी है अपितु धारणा का स्तर भी समृद्ध हुआ है। यही कारण है कि आज के समय में व्याख्यात्मक एवं अन्वेषण विधि को प्रमुख शिक्षण विधि के रूप में सम्मान प्राप्त हुआ है।

5.6 अभ्यास के प्रश्न

1. प्रदर्शनी विधि के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. अन्वेषण विधि के गुण एवं अवगुण की विवेचना कीजिए।

5.7 चर्चा के बिन्दु

1. व्याख्यात्मक विधि किस प्रकार उपयोगी है? चर्चा कीजिए।
2. कक्षा शिक्षण में अन्वेषण विधि के प्रयोग पर चर्चा कीजिए।

5.8 बोध प्रश्ना के उत्तर

1. इस विधि में बालको को मूर्त वस्तुएँ पाठशाला/कक्षा में दिखाई जाती है। प्रत्यक्ष वस्तुएँ देखने पर छात्र उनके विषय में प्रत्यक्ष अनुभव ग्रहण करता है। फलतः सीखने का अनुभव रोमॉचक एवं रूचिकर हो जाता है। शैक्षिक व्याख्यात्मक इसका उत्तम उदाहरण है।
2. यह विधि अन्वेषण करने अथवा अपने आप सीखने की विधि है। इस विधि में बालक को तथ्यों का अध्ययन, अवलोकन और निरीक्षण करने का अवसर दिया जाता है ताकि वे स्वयं अपने प्रयास से अध्यापक के मार्गदर्शन में ज्ञान एवं सत्य का अन्वेषण करें।
3. अन्वेषण विधि के गुण–
   (क) यह छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करती है।
   (ख) यह विधि स्वयं करके सीखने का अवसर देती है।
   (ग) यह विधि छात्रों में स्वाध्याय की आदत का विकास करती है।

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. त्यागी, गुरसरन दास (2012),' वाणिज्य शिक्षण,' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज (2017),' वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ– 250001
3. माथुर, एस0एस0, (1994),' शिक्षण कला,' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001
5. सिंह, आर0पी0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'पेडागागी आफ स्कूल सब्जेक्ट कामर्स,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001

इकाई 06 : वाणिज्य अधिगम में समूह कार्य और सहकारी या सहयोगात्मक रणनीतियाँ

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 इकाई के उद्देश्य

6.3 वाणिज्य अधिगम में समूह

6.3.1 समूह में अधिगम के गुण

6.3.2 समूह में अधिगम की सीमायें

6.4 समूह कार्य एवं सहयोगात्मक रणनीतियाँ

6.5 सारांश

6.6 अभ्यास के प्रश्न

6.7 चर्चा के बिन्दु

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समूह के सदस्य के रूप रहना उसके विकास एवं आत्मिक संतुष्टि के लिए अनिवार्य शर्त है। मनुष्य समूह में जीवन ही नहीं गुजारता अपितु सीखता भी है। इसलिए शिक्षाशास्त्रियों ने अधिगम को मनोवैज्ञानिक के साथ–साथ सामाजिक क्रिया माना है। इसका कारण यह है कि व्याक्ति अकेले ही नहीं सीखता है अपितु समूह में भी सीखता है। समूह के सदस्य के रूप में वह उनकी आदतों, रीति–रिवाजों, दिनचर्या, संस्कार, आचार–पद्धति आदि सीखता है। समूह में रहकर वह विद्यालय में औपचारिक शिक्षा ग्रहण करता है। समूह में सीखना उसकी स्वाभाविक रूचि का विषय होता है। समूह में सीखते समय छात्र एक दूसरे से चर्चा–परिचर्चा करते हैं। इससे उनके अन्दर तर्क, चिन्तनशीलता, कल्पनाशीलता इत्यादि का विकास होता है। जब शिक्षण कार्य छोटे–छोटे समूह में बाँटकर किया जाता है तब समूह के सदस्य एक भावनात्मक बन्धन में बंधते है और उनमें सीखने तथा समूह में कार्य करने को लेकर नवीन ऊर्जा का संचार होता है। समूह के सदस्य दूसरे सदस्यों से स्वस्थ्य प्रतिस्पर्धा भी करते हैं। ऐसे में सीखने को लेकर स्वस्थ्य एवं प्रतिस्पर्धी वातावरण का सृजन होता है जो छात्र एवं शिक्षक दोनो के हित में होता है। इससे छात्रों में सिखने की गति बढ़ जाती है तथा अधिगम अपेक्षाकृत स्थायी होता है। इससे समूह अधिगम का महत्व समझा जा सकता है। वाणिज्य विषय का अध्ययन–अध्यापन अत्यन्त चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसका कारण है कि इस विषय का व्यक्ति के जन–जीवन से सीधा जुड़ाव है। अनुभवी एवं चिंतनशील शिक्षक हमेशा पारम्परिक तरीकों के अतिरिक्त शिक्षण की नवीन विधियों का प्रयोग भी करते रहते हैं ताकि अधिगम एवं अध्यापन को अधिक बोधगम्य एवं रूचिकर बनाया जा सके। शैक्षिक अनुसंधानकर्ताओं ने ऐसी अनेक शिक्षण विधियों का विकास किया है जिन्हें अधिगम अध्ययन के पारम्परिक विधियों की कमजोरियों से मुक्त बताया जाता है। इनमें समूह अधिगम, समूह कार्य एवं सहयोगात्मक रणनीतियाँ प्रमुख है। इन शिक्षण विधियों में छात्रों के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाने की विपुल क्षमता है। इस इकाई में हम सभी इन्हीं शिक्षण विधियों के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

6.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. समूह अधिगम का आशय स्पष्ट कर सकेंगे।

2. समूह अधिगम के गुण बता सकेंगे।
3. समूह अधिगम के अवगुणों की चर्चा कर सकेंगे।
4. समूह कार्य को उदाहरण सहित समझा सकेंगे।
5. सहयोगात्मक रणनीतियों की विशेषता बता सकेंगे।
6. सहयोगात्मक रणनीतियों को सोदाहरण स्पष्ट कर सकेंगे।

6.3 वाणिज्य अधिगम में समूह

अनेक शोधों से यह पता चल गया है कि वे समस्त शिक्षण– पद्धतियाँ जिसमें छात्र निष्क्रिय श्रोता मात्र रहता है और शिक्षक सक्रिय रहता है शिक्षा के दृष्टिकोण से उपयोगी नहीं है। फलतः शिक्षाविदों ने ऐसी शिक्षणविधियों का विकास किया जिसमें छात्र सक्रिय रूप से भाग ले सकें। इन शिक्षण विधियों में अध्यापक का कार्य केवल पथ–प्रदर्शन करना होता है। इन पद्धतियों में समूह कार्यपद्धतियाँ प्रमुख हैं। इस पद्धति के अंतर्गत छात्र सहयोग तथा सद्भाव के आधार पर कार्य करके ज्ञानार्जन करते है। इन विधियों में समाजीकृत विधि, योजना विधि, सेमिनार, वाद–विवाद, समूह कार्य आदि आते हैं। इस विधि में कई युक्तियां भी प्रयोग की जाती है। जिसमें कक्षा के सभी छात्र वक्राकार घेरे में बैठते हैं। शिक्षक भी छात्रों के साथ स्थान ग्रहण करता है। कक्षा कार्य का संचालन किसी एक छात्र को सौंप दिया जाता है। कक्षा–कार्य के कार्यक्रम में छात्र प्रश्नोत्तर तथा अन्य विधियों से ज्ञान प्राप्त करते हैं। अन्त में अध्यापक कोई त्रुटि पाता है तो कक्षा समाप्ति के पश्चात् अपने व्याख्यान के द्वारा उन कमियों को दूर करता है। इस विधि में दूसरी युक्ति है कि पूरी कक्षा को कार्य सम्पादन की दृष्टि से छोटे–छोटे समूहों में बाँटकर कार्य दिये जाते हैं। सभी समूहों का एक लीडर होता है। प्रत्येक समूह को पाठ का पृथक–पृथक खण्ड दे दिया जाता है। जिसे वे पढ़कर पहले आपस में परिचर्चा करते हैं पुनः समूह के रूप में प्रस्तुतीकरण करते हैं। इससे सभी समूहों के बीच स्वस्थय प्रतिस्पर्धा होती है और वे समूह में बढ़िया ढंग से सीखते हैं। इस विधि में योजना पद्धति भी शामिल है जिसमें छात्रों के छोटे–छोटे समूह को पाठ पर आधारित प्रोजेक्ट कार्य दिये जाते हैं। सभी समूह के छात्र प्रोजेक्ट कार्य करते हुए सीखते हैं। इसमें अध्यापक की भूमिका मार्गदर्शक व प्रथ प्रदर्शक की होती है।

6.3.1 समूह में अधिगम के गुण–

(1) इस पद्धति में सीखते समय छात्र सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।
(2) सामाजिक विषयों और विज्ञान के शिक्षण में यह विधि समान रूप से उपयोगी है।
(3) समूह विधि से अधिगम में छात्र योजना बनाना सीख जाते हैं।
(4) इससे छात्रों में सामूहिकता व सामाजिक गुणों का विकास होता है।
(5) छात्रों के समूहों में अधिगम हेतु स्वस्थ्य प्रतिस्पर्धा होती है।
(6) यह पद्धति छात्रों में नेतृत्व गुणों का विकास करती है।
(7) समूह पद्धति छात्रों को सीखने हेतु प्रेरित करती है।
(8) इस पद्धति से छात्रों में सहकारिता व सहयोग की भावना विकसित होती है।
(9) इसमें अध्यापक की भूमिका पथप्रदर्शक, सहयोगी, मित्र आदि की होती है।

6.3.2 समूह में अधिगम की सीमायें–

(1) इस विधि में अध्यापक का महत्व कम हो जाता है।
(2) इस पद्धति द्वारा वाणिज्य विषय की समस्त विषयवस्तु नहीं पढ़ायी जा सकती है।
(3) इस पद्धति में समूह के सभी छात्र अधिगम हेतु समान रूप से सक्रिय नहीं रहते हैं।
(4) समूहों के बीच में प्रतिस्पर्धा प्रायः विवाद का कारण बनती है।

(5) इस विधि द्वारा अधिगम में समय अधिक लगता है।

6.4 समूह कार्य या सहयोगात्मक रणनीतियाँ

वाणिज्य एक ऐसा विषय है जहाँ सैद्धान्ति ज्ञान के साथ–साथ छात्र को व्यवहारिक अनुभव प्रदान करना भी अत्यन्त आवश्यक है। यह व्यवहारिक अनुभव छात्र को समूह कार्य अथवा प्रोजेक्ट वर्क के माध्यम से प्रदान किये जा सकते हैं। वाणिज्य शास्त्र के अध्यापक को चाहिए कि वह कक्षा में पढ़ाते समय छात्र को स्वयं करके अधिक से अधिक अनुभव अर्जित करने का अवसर प्रदान करे। इस हेतु शिक्षक कक्षा में गतिविधि आधारित शिक्षण कार्य कर सकता है। वह अपने छात्रों को छोटे–छोटे समूहों में बाँटकर उनको पाठ पर आधारित प्रोजेक्ट कार्य पूरा करने को कह सकता है। इससे छात्रों को स्वयं करके सीखने का अवसर प्राप्त होगा। दैनिक व्यापार का व्यावहारिक अनुभव प्रदान करने हेतु शिक्षक को छात्रों को छोटे–छोटे समूह में बाँटकर विद्यालय में मेला, प्रदर्शनी आदि कार्यक्रम आयोजित करवाने चाहिए। जिसमें वे अपने द्वारा निर्मित सामानों की खरीद बिक्री कर सकें। इसके माध्यम से छात्रों को बाजार व व्यापार का व्यवहारिक अनुभव प्राप्त होगा। इस प्रकार की शिक्षण व्यूह रचनाओं के माध्यम से शिक्षक छात्रों को सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ व्यवहारिक ज्ञान भी प्रदान कर सकता है। वास्तव में सहकारी शिक्षण, शिक्षण रणनीतियों का एक समुच्चय है। इसका उपयोग शिक्षार्थियों को विशिष्ट रूप से सीखने और पारम्परिक लक्ष्यों को पूरा करने में सहायता करने के लिए किया जाता है। उदाहरण स्वरूप अगर शिक्षक के रूप में आपके द्वारा समूह कार्य के रूप में छात्रों को स्थानीय बाजार में विभिन्न सामानों की खरीद बिक्री का व्यावहारिक अनुभव प्रदावन करने हेतु स्थानीय मेले का आयोजन किया जाता है तो इस समूह कार्य को सफल बनाने के लिए शिक्षक के रूप में आपको न केवल पूरी योजना रचना तैयार करनी होगी अपितु योजना बनाने में छात्रों को भी सहभागी बनाना होगा। छात्रों को उनकी भूमिका को समझाना होगा। छात्रों में कौन ग्राहक का रोल अदा करेगा? कौन दुकानदार की भूमिका में होगा? यह भी सम झाना होगा। बाँट–माप विभाग के कर्मचारी, यातायात पुलिस, सफाई–कर्मचारी आदि भूमिकाओं के लिए छात्रों को तैयार काना होगा। पूर्व निर्धारित स्वरूप के अनुरूप तय समय एवं तिथि पर छात्रों के द्वारा स्थानीय बाजार का प्रतिरूप तैयार होकर सजे इसकी पूरी तैयारी करनी होगी। खरीद–बिक्री हेतु सामानो की व्यवस्था, दुकान के पोस्टर बैनर की व्यवस्था, पार्किंग व्यवस्था इत्यादि भी तय करने होंगे। इतनी तैयारी के पश्चात् ही स्थानीय बाजार का सही स्वरूप छात्रों के सम्मुख तैयार होगा और वहाँ पर वह अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुए बाजार में खरीद–बिक्री का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर सकेंगे।

सहकारी रणनीतियों की विशेषताएँ–

सहकारी रणनीतियों की निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती है–

1. यह शिक्षण या अधिगम विधि नहीं है।
2. बल्कि यह शिक्षण विधियों का समुच्चय है।
3. यह शिक्षण को दो प्रकार के लक्ष्यों, अर्थात सीखने के लक्ष्यों और पारस्परिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता करता है।
4. सहकारी अधिगम छात्रों की अधिगम उपलब्धि में सुधार के साथ–साथ पारस्परिक कौशल के विकास के अनुकूल है।
5. सहकारी अधिगम संरचित समूह में होता है।
6. यह समूह योजनाबद्ध और व्यवस्थित तरीके से बनाये जाते हैं।
7. समूह के सदस्य साझा लक्ष्य रखते हैं जो उन्हें एक साथ बाँधता है।
8. कार्य के निष्पादन हेतु समूह के सदस्य अन्योन्याश्रित होते हैं।
9. समूह कार्य सभी सदस्यों को सीखने और ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने का अवसर प्रदान करता है।
10. सीखने वाले समूह का स्पष्ट लक्ष्य दिये गये कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करना होता है। सहकारी समूह

के सदस्य एक साथ कार्य करते हैं, एक दूसरे की मदद करते हैं और समूह के रूप में पुरस्कार (परिणाम) प्राप्त करते हैं।

11. सहकारी अधिगम में समूह का प्रदर्शन और व्यक्तिगत प्रदर्शन हमेशा अन्योन्याश्रित रहता है। उदाहरण के लिए फुटबाल के खेल में टीम के सभी सदस्यों के पास समान स्तर की विशेषज्ञता नहीं होती है लेकिन वे सभी जीतने के अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए टीम के प्रयास में योगदान करते हैं। टीम के सदस्यों के खेल का मूल्यांकन व्यक्तिगत प्रदर्शन और टीम के प्रदर्शन के रूप (दोनों) में होता है। जीत को एक या कुछ व्यक्तियों के पुरस्कार के बजाय पूरी टीम को पुरस्कृत किया जाता है।

12. सहकारी अधिगम रणनीतियाँ छात्रों में व्यवहारिक परिवर्तन लाने में मदद करती है।

13. छोटे समूहों का निर्माण करना सहकारी अधिगम रणनीतियों की अनिवार्य विशेषता है।

14. अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिए समूह गठन मे छात्रों की सहायता और मार्गदर्शन अपेक्षित होता है।

15. क्षमता के संदर्भ में समूह सजातीय या विषम हो सकते हैं।

16. एक समरूप समूह में समूह के सभी सदस्य समान क्षमता या उपलब्धि स्तर के होते हैं। इनकी श्रेणियाँ उच्च, मध्यम या निम्न हो सकती हैं।

17. विषम समूह में विभिन्न क्षमता स्तरों के छात्रों को सम्मिलित किया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. समूह में अधिगम को अपने शब्दों में परिभाषित करें।

....

....

....

2. समूह में अधिगम के कोई दो गुण बताइये।

....

....

....

3. समूह में अधिगम के कोई दो अवगुण बताइये।

....

....

....

4. सहयोगात्मक रणनीतियों की श्रेणियाँ कौन–कौन सी है?

....

....

5. समूह कार्य की कोई दो विशेषतायें बताइये।

....

....

6.5 सारांश

वाणिज्य एकांत में बैठकर चिन्तन मनन किया जाने वाला अनुशासन नहीं है। यहाँ अपने ज्ञान का प्रयोग व्यक्ति और समूह के बीच व्यापारिक गतिविधियों के संचालन हेतु होता है। अतः ऐसे विषय का व्यावहारिक ज्ञान समूह के मध्य ही दिया जाना चाहिए। यही कारण है कि वर्तमान समय में वाणिज्य अधिगम हेतु समूह अधिगम, समूह कार्य और सहयोगात्मक रणनीतियों को अत्याधिक महत्व दिया जाने लगा है। शिक्षाविदों ने ऐसी शिक्षण विधियों का विकास किया है जिसमें छात्र सक्रिय रूप से भाग लेते हुए सीख सकें। इन शिक्षण विधियों में अध्यापक की भूमिका पथ–प्रदर्शक की होती है। इन शिक्षण–अधिगम विधियों में समाजीकृत विधि, योजना–विधि, वाद–विवाद, सेमीनार आदि आते हैं। इन विधियों में सामान्यतः कक्षा को कार्य सम्पादन की दृष्टि से छोटे–छोटे समूहो में बाँट दिया जाता है। सभी समूहों का एक छात्र नेतृत्वकर्ता होता है। प्रत्येक समूह को पृथक–पृथक अथवा निर्धारित कार्य दिये जाते हैं। इन कार्यों को आपस में चर्चा करके वे तैयार करते हैं और यथाविधि प्रस्तुतीकरण करते हैं। इससे सभी समूहों के मध्य स्वस्थ्य प्रतिस्पर्धा होती है और वे समूह में अच्छे ढ़ंग से सीखते हैं। इसमें अध्यापक की भूमिका मार्गदर्शक की होती है।

6.6 अभ्यास के प्रश्न

1. समूह अधिगम के गुण बताइये।
2. समूह अधिगम की सीमायें बताइये।
3. समूह कार्य को उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
4. सहयोगात्मक रणनीतियों की विशेषतायें बताइये।
5. उदाहरण के माध्यम से प्रभावशाली सहयोगात्मक रणनीतियों पर प्रकाश डालिए।

6.7 चर्चा के बिन्दु

1. समूह अधिगम के गुण–अवगुण पर चर्चा कीजिए।
2. कक्षा शिक्षण के समय समूह कार्य का नियोजन कैसे किया जाये इस पर चर्चा करें।
3. सहयोगात्मक रणनीतियों के प्रयोग से सम्बन्धित पारिस्थितियों पर आपस में चर्चा करें।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस पद्धति में छात्र आपसी सहयोग तथा सद्भाव के आधार पर कार्य करते हुए सीखते है।
2. समूह अधिगम के गुण–

   (क) समूह विधि से अधिगम में छात्र योजना बनाना सीख जाते है।

   (ख) इससे छात्रों में सामूहिकता एवं सामाजिक गुणों का विकास होता है।
3. समूह अधिगम के अवगुण–

   (क) इस विधि में अध्यापक का महत्व कम हो जाता है।

   (ख) इस पद्धति के माध्यम से वाणिज्य विषय की समस्त विषयवस्तु नहीं पढ़ायी जा सकती है।
4. सामूहिक रणनीतियों की श्रेणियॉ निम्नवत् है–

   (क) समजातीय समूह

   (ख) विषम जातीय समूह
5. समूह कार्य की विशेषताएँ निम्न है–

   (क) समूह योजनाबद्ध तरीके से बनाये जाते हैं।

(ख) समूह के सदस्य साझा लक्ष्य रखते है जो उन्हे एक साथ बॉधता है।

6.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. त्यागी, गुरसरन दास (2012),' वाणिज्य शिक्षण,' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज (2017),' वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ– 250001
3. माथुर, एस0एस0, (1994),' शिक्षण कला,' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001
5. सिंह, आर0पी0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'पेडागागी आफ स्कूल सब्जेक्ट कामर्स,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001

खण्ड 03 : वाणिज्य शिक्षण की रणनीतियाँ– II

खण्ड परिचय

शिक्षण तकनीकी के विस्तार के फलस्वरूप अध्ययन–अध्यापन के क्षेत्र में तकनीकी यंत्रों एवं शिक्षक प्रशिक्षण की आधुनिक विधियों का प्रचलन बढ़ा है। आडियो–विडियो रिकार्डर, लर्निंग एप, आनलाइन प्रशिक्षण, आनलाइन शिक्षण, शिक्षण चैनल, लाइव कक्षा आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। छात्रों की वैयक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत रूचियों वं क्षमतओं के अनुसार सीखने हेतु अधिगम यंत्रों एवं विधियों का विकास हुआ है। इन अधिगम यंत्रों का निर्माण अधिगम सिद्धान्तों एवं अनुदेशन तकनीकी के आधार पर किया गया है। अतः ये बेहद प्रभावशाली और परिणामशील होते हैं। इस खण्ड की विभिन्न इकाईयों में हम सभी इन्हीं तकनीकि यंत्रों, पाठ्यसहगामी क्रियाओं, और शिक्षण की नवीन विधाओं पर चर्चा करेंगे।

इकाई– 07 : इस इकाई में हम सभी पाठ्य सहगामी क्रियाओं से आशय, पाठ्यसहगामी क्रियाओं का अधिगम में महत्व, पाठ्यसहगामी क्रियाओं के प्रकार, वाणिज्य शिक्षण में बहुतायत से प्रयुक्त की जाने वाली पाठ्यसहगामी क्रियाओं एवं पाठ्यसहगामी क्रियाओं के प्रशासन पर विस्तार पूर्वक चर्चा करेंगे।

इकाई– 08 : इस इकाई के अन्तर्गत हम सभी अभिक्रमिक अनुदेशन का अर्थ, विकास, विशेषताएँ, सिद्धान्त तथा उसके प्रकार के बारे में विस्तार पूर्वक चर्चा करेंगे।

इकाई– 09 : इस इकाई में वाणिज्य शिक्षण में नवीन दृष्टिकोण पर विशद् चर्चा की जायेगी। इसके तहत सूक्ष्म शिक्षण से आशय, सूक्ष्म शिक्षण की परिभाषा, सूक्ष्म शिक्षण के सोपान, सूक्ष्म शिक्षण के लाभ और सूक्ष्म शिक्षण की सीमाओं के बारे में अध्ययन करेंगे।

इकाई 07 : वाणिज्य अधिगम में पाठ्य सहगामी एवं अ–औपचारिक उपागम

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 इकाई के उद्देश्य

7.3 पाठ्य सहगामी क्रियायें और अ–औपचारिक पद्धति से आशय

7.3.1 पाठ्य सहगामी क्रियाओं का महत्व

7.3.2 पाठ्य सहगामी क्रियाओं के प्रकार

7.3.3 वाणिज्य शिक्षण हेतु पाठ्य सहगामी क्रियायें

7.4 पाठ्य सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था एवं प्रशासन हेतु सुझाव

7.5 सारांश

7.6 अभ्यास के प्रश्न

7.7 चर्चा के बिन्दु

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। यह विद्यालय की चहारदीवारी ही नहीं अपितु उसके बाहर भी निरन्तर चलती रहती है। बहुत सारी जीवनोपयोगी शिक्षा कक्षा के बाहर वास्तविक या समरूप पारिस्थितियों में ही सीखने को मिलती है। अ–औपचारिक शिक्षा में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का बडा महत्व है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं का व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। इससे छात्र के व्यवहार के उन अनछुएँ पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है जो औचारिक कक्षा में प्रकाशित नहीं हो पाते हैं। नृत्य, गीत, संगीत, खेल, सहयोग, ईमानदारी, प्रेम, समर्पण जैसे गुणों का विकास एवं पता पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा ही चलता है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं के अभाव में किंचित यह गुण विकासित ही न होने पायें। यह वह मंच है जहाँ छात्र का व्यक्तित्व निखरकर प्रकाश में आता है। छात्र अगर खेल–कूद की गतिविधि में रूचि रखता है तो उसे कक्षा के साथ–साथ खेल गतिविधियों में भाग लेना होगा। छात्र अगर ललित कलाओं में रूचि रखता है तो उसे कक्षा के अतिरिक्त ऐसे कार्यक्रमों मे भाग लेना होगा जहाँ नृत्य, संगीत एवं गीत के कार्यक्रम होते हो ताकि वहाँ उसकी प्रतिभा को निखरने का आवसर मिले और उसकी पहचान हो सके। छात्र जब समूह की गतिविधि में भाग लेता है तो उसकी सामूहिक चेतना अथवा सामाजिकता के गुणों का विकास होता है। समूह मे कार्य करते हुए ही छात्र मे सहनशीलता, सहयोग, सत्यनिष्ठा मेहनत, समर्पण आदि गुणों का विकास होता है। समूह के दूसरे सदस्यों की चिन्ता करना एवं सहअस्तित्व की भावना का भी विकास होता है। पाठ्य सहगामी क्रियायें भी दो तरह की होती है–

1. शैक्षिक क्रियायें : जैसे– सेमीनार, प्रोजेक्ट, शैक्षिक भ्रमण, भाषण प्रतियोगिता, निबन्ध प्रतियोगिता आदि।
2. गैर शैक्षिक क्रियायें : जैसे– नृत्य, गीत एवं संगीत के कार्यक्रम, कताई–बुनाई, सिलाई के कार्य, खेल गतिविधि, समाजकार्य इत्यादि।

इस तरह पाठ्य सहगामी क्रियाओं का विविधता भरा संसार है। इसमें छात्रों को सीखने के पर्याप्त अवसर प्राप्त होते है। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से इनका महत्व सर्वविदित है। यही कारण है कि वर्तमान समय में सभी शिक्षा शास्त्रियों ने एकमत से पाठ्य सहगामी क्रियाओं के स्थान पर अ–औपचारिक शिक्षा के माध्यमों को पाठ्य सहगामी क्रिया कहना प्रारम्भ कर दिया है। इससे अ–औपचारिक माध्यम अब पाठ्यचर्या का अनिवार्य अंग बन गये है। इस इकाई में हम सभी पाठ्य सहगामी क्रियाओं के महत्व एवं उपयोगिता के बारे

में विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। कक्षा शिक्षण एवं उसके उपरान्त पाठ्यसहगामी क्रियाओं के उपयोग के तरीके पर भी विस्तारपूर्वक चर्चा की जायेगी।

7.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. पाठ्य सहगामी क्रियाओं को परिभाषित कर सकेंगे।
2. पाठ्य सहगामी क्रियाओं का महत्व बता सकेंगे।
3. वाणिज्य शिक्षण हेतु उपयोगी पाठ्यसहगामी क्रियाओं का उल्लेख कर सकेंगे।
4. पाठ्य सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था एवं प्रशासन के तरीके बता सकेंगे।

7.3 पाठ्य सहगामी क्रियाआं और अ–आपचारिक पद्धति से आशय

पाठ्य सहगामी क्रियाओं से आशय उन क्रियाओं से है जो छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक मानी जाती हैं। यह वाणिज्य शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति में बहुत उपयोगी होती हैं। प्रो० पठान के अनुसार ''पाठ्य सहगामी क्रियाओं से तात्पर्य उन छात्र– क्रियाओं से है, जिनमें छात्र, अध्यापक के मार्गदर्शन में उत्तरदायित्वों को सुनियोजित विधि से सम्पन्न करने के लिए भाग लेते हैं।'' अगर देखा जाय तो पहले पाठ्य सहगामी क्रियाओं को पाठ्येत्तर गतिविधियों के रूप में जाना जाता था। यह गैर शैक्षणिक पाठ्यक्रम का एक अंग होता था। पाठ्य सहगामी क्रियाएँ छात्रों के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को विकसित करने में मदद करते हैं। छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु भावनात्मक, शारीरिक, आध्यात्मिक और नैतिक विकास जरूरी है। यहाँ पाठ्यसहगामी क्रियाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। बालक औपचारिक शिक्षा प्रारम्भ करने से पूर्व अपने घर से ही विभिन्न प्रकार की आदतें, सामाजिक आचार–विचार सीखना प्रारम्भ कर देता है। सामाजिक नैतिकता, व्यवहार कुशलता आदि का प्रशिक्षण उसे अपने घर से ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है। बच्चा अपने पास–पड़ोस, चाचा, ताऊ, रिश्तेदार, मित्र मंडली और विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक समूहों से भी सीखता है। व्यक्ति के विकास में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बहुधा अगर औपचारिक शिक्षा में कोई कमी रह जाती है तो भी उसकी भरपाई व्यवहारिक शिक्षा देने वाली इसी अ–औपचारिक विधि से ही होती है। इसमें संचार माध्यम, इण्टरनेट, प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं विभिन्न समाचार पत्रों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि पाठ्य सहगामी क्रियाएँ शिक्षण संस्थाओं में जहाँ शिक्षण कार्य के साथ–साथ संचालित होती है वहीं अ–औपचारिक अधिगम के लिए स्थान, समय और माध्यम का कोई बंधन नहीं होता है।

7.3.1 पाठ्य सहगामी क्रियाओं का महत्व

विद्यालयों में पाठ्य सहगामी क्रियाओं को अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन क्रियाओं के महत्व को इस प्रकार समझा जा सकता है–

(अ) छात्रों के लिए महत्व–

(1) यह मूलप्रवृत्तियों का शोधन एवं मार्गान्तरीकरण करती हैं।

(2) यह सामाजिक भावना का विकास करती है।

(3) यह नागरिकता की शिक्षा प्रदान करती हैं।

(4) ये अवकाश के समय का सदुपयोग करना सीखाती है।

(5) यह व्यक्तित्व तथा अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है।

(6) यह नैतिकता का विकास करती है।

(7) यह व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती है।

(8) यह मानवीय गुणों का विकास करती है।

(ख) विद्यालय के लिए महत्व–

(1) शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होती है।

(2) विद्यालय के वातावरण को आनन्दायक तथा ओजपूर्ण बनाती है।

(3) विद्यालय को समाज के निकट लाती है।

(4) छात्रों की अन्तर्निहित शक्तियों की पहचान करने में सहायक होती है।

(ग) समाज एवं राष्ट्र के लिए महत्व–

(1) समाज की संस्कृति एवं सभ्यता के प्रसार में योगदान देती है।

(2) देशभक्ति की भावना का विकास करती है।

(3) समाज को एक जागरूक नागरिक बनाती है।

(4) छात्रों के मध्य प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास करती है।

(5) छात्रों के अंदर नेतृत्व के गुणों का विकास कर समाज व राष्ट्र का नेतृत्व करने हेतु तैयार करती है।

उपरोक्त के अतिरिक्त पाठ्यसहगामी क्रियाओं का महत्व निम्नलिखित है–

(1) वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक–

प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यो की स्वीकृति दूसरों के द्वारा चाहता है। पाठ्य सहगामी क्रियाएँ इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इस तरह की गतिविधियाँ–आत्माभिव्यक्ति, स्वयं तथा दूसरों को जानने का अवसर, रूचियों को अभिव्यक्ति प्रदान करना, नवीन परिस्थितियों में समायोजन आदि का अवसर प्रदान करती है।

(2) सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति–

हमारी सामाजिक आवश्यकताएँ वैयक्तिक आवश्यकताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों के विकास एवं सराहना हेतु गहरी आशक्ति रखता है। मनुष्य की यह गहरी आंकाक्षा उसे दूसरे लोगों के साथ कार्य करने एवं सम्बन्ध स्थापित करने हेतु प्रेरित करती है। पाठ्य सहगामी क्रियायें इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ ही सामाजिक अनुशासन में रहने एवं व्यक्तिगत संघर्षों पर विराम भी देती हैं।

(3) नागरिक ग्‌णो का विकास–

पाठ्य सहगामी क्रियाये छात्रो को समूह में रहकर कार्य करने एवं नागरिकता के गुणो के विकास का भी अवसर प्रदान करती हैं। इन क्रियाओ के द्वारा सहयोग, परस्पर सम्मान, सहनशीलता, सामाजिक कुशलता, त्याग, समर्पण आदि गुणों का विकास होता है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं से छात्रो के अन्दर लोकतांत्रिक नागरिकता के गुणों का भी विकास होता है।

(4) किशोरावस्था की ऊर्जा का समन्वय–

किशोरावस्था को संघर्ष एवं तूफान की अवस्था कहा जाता है। इस उम्र में छात्र ऊर्जा से ओत–प्रोत रहता है। पाठ्यसहगामी क्रियाओं के माध्यम मे छात्रों की अतिरिक्त ऊर्जा को खेल, सामाजिक कार्यों एवं राष्ट्र निर्माण में लगाकर उसे सही दिशा प्रदान की जाती है। अगर इन क्रियाओं के माध्यम से किशोरों की असीमित ऊर्जा को सही दिशा न प्रदान की जाये तो वह उफनती नदी की तरह तबाही मचा देते हैं। विभिन्न कार्यक्रमों, क्लबों एवं आयोजनों के द्वारा छात्रों की ऊर्जा को सही दिशा प्रदान कर उनके अन्दर सामाजिकता, सहनशीलता एवं नैतिक गुणों का विकास किया जाता है।

(5) शारीरिक क्षमता का विकास–

पाठ्य सहगामी क्रियाओं मे खेल गतिविधि का महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न खेल गतिविधियों मे भाग

लेकर छात्रों की ऊर्जा के समायोजन के साथ ही उनकी शारीरिक क्षमताओं का भी विकास होता है। उनकी मांशपेशियाँ मजबूत होती हैं।

(6) छात्रों में नैतिकता के गुणों का विकास–

पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भाग लेने से छात्रों में मेहनत, सत्यवादिता, सहयोग, समर्पण, निष्ठा, त्याग, सकारात्मक दृष्टिकोण, समूह भावना, उदारता, सहअस्तित्वत की भावना का विकास, धैर्य, दृढ़ता, विनय, आत्मविश्वास आदि गुणों का विकास होता है। समूह क्रिया में भाग लेने से छात्र व्यक्तिगत स्वार्थ को दूसरों के हित के लिए त्यागना सीख जाता है जिससे उनमें नैतिक गुणों का विकास होता है।

(7) अनुशासन की भावना का विकास–

सामूहिक गतिविधियों के माध्यम से छात्रो के अन्दर सामूहिकता एवं अनुशासन की भावना का विकास होता है। जो कार्य कक्षा–शिक्षण नहीं कर सकता वह कार्य पाठ्यसहगामी क्रियाओं के माध्यम से हो जाता है। इसीलिए पाठ्यसहगामी क्रियाओं को कक्षा–शिक्षण का पूरक कहा जाता है।

7.3.2 पाठ्य सहगामी क्रियाओं के प्रकार

विद्यालय में अनेकों प्रकार के पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। जिनमें प्रमुख निम्नवत् है–

(1) साहित्यिक क्रियाएँ–

साहित्यसभा, वाद–विवाद, परिषद्, पत्रिका प्रकाशन, बुलेटिन बोर्ड, दीवार पत्रिका आदि।

(2) शारीरिक क्रियाएँ–

सामूहिक खेल, एन०सी०सी०, एन०एस०एस०, रोवर्स रेंजर्स, स्काउट–गाइड आदि ।

(3) शैक्षिक क्रियाएँ–

साहित्य परिषद, विज्ञान कला क्लब, वाणिज्य परिषद् आदि ।

(4) शिल्प कला क्रियाएँ–

सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, मेंहदी रचना, खिलौना बनाना, रेडियो प्रसारण, स्वरोजगार प्रशिक्षण आदि ।

(5) सामान्य क्रियाएँ–

भ्रमण, पिकनिक, ग्राम्य पर्यवेक्षण, बालचर, स्काउटिंग, प्रौढ़ शिक्षा, फोटोग्राफी, साफ सफाई अभियान आदि।

7.3.3 वाणिज्य शिक्षण हेतु पाठ्य सहगामी क्रियाएँ

वाणिज्य शिक्षण के क्षेत्र में पाठ्य सहगामी क्रियाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं की सहायता से वाणिज्य विषय के छात्रों को इस विषय से सम्बन्धित अनेक प्रकार की जानकारी सहज, स्वाभाविक तथा व्यावहारिक रूप में प्रदान की जाती है। इन क्रियाओं की सहायता से वाणिज्य शिक्षण को सरस तथा आकर्षक बनाया जाता है। वाणिज्य शिक्षण को प्रभावी व आकर्षक बनाने में निम्नलिखित पाठ्य सहगामी क्रियाओं का महत्वपूर्ण योगदान है–

(1) वाणिज्य क्लब

छात्रों को वाणिज्य विषय का विस्तृत एवं व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने के लिए वाणिज्य क्लब की स्थापना की जा सकती है। इस क्लब के माध्यम से छात्र वाणिज्य विषयक क्रियाकलाप में भाग लेकर वाणिज्य विषय के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

(2) वाणिज्य परिषद्

विद्यालय कला परिषद, विज्ञान परिषद आदि के समान ही वाणिज्य परिषद का गठन किया जा सकता

है। यह परिषद अपने तत्वावधान में अनेक शैक्षिक क्रियाओं का संचालन कर वाणिज्य विषय को सरल तथा प्रभावी बना सकती है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि इस परिषद का अपना स्वयं का विधान हो तथा विधान के अनुसार ही इसका गठन हो। यह परिषद विभिन्न पाठ्यसहगामी क्रियाओं का नियोजित ढंग से संचालन करती है।

(3) उपभोक्ता सहकारी भण्डार

विद्यालय प्रांगण में सहकारिता के आधार पर उपभोक्ता भण्डार स्थापित किया जा सकता है। इसमें छात्रों के लिए उपयोगी वस्तुएँ क्रय–विक्रय की जाये। इस स्टोर में सामग्री का क्रय–विक्रय, हिसाब–किताब रखना, लाभ हानि का विवरण तैयार करना, लाभांश वितरित करना आदि सभी कार्य छात्रों के द्वारा ही किया जाना चाहिए।

उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य पाठ्य सहगामी क्रियाएँ संचालित की जा सकती हैं जो निम्नलिखित हैं–

(1) बाल बैंक या बचत बैंक

(2) भ्रमण तथा पर्यवेक्षण

(3) डाकघर संचालन

(4) कार्यगोष्ठी तथा समाचार

(5) विद्वतजन भाषण

(6) वाणिज्य पत्रिका

(7) पुस्तक बीमा योजना

(8) वाद विवाद प्रतियोगिता

7.4 पाठ्य सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था एवं प्रशासन हेतु सुझाव

पाठ्य सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था एवं प्रशासन हेतु सुझाव निम्नलिखित है–

(1) इनका संगठन व प्रशासन लोकतांत्रिक पद्धति से होना चाहिए।

(2) समस्त क्रियाओं के संचालन के लिए प्रधानाध्यापक की स्वीकृति आवश्यक है।

(3) पाठ्य सहगामी क्रियाएँ रोचक एवं सरस हों ।

(4) पाठ्य सहगामी क्रियाओं का समुचित निरीक्षण किया जाना चाहिए। निरीक्षण छिद्रान्वेषण न होकर उत्साहवर्द्धक और पथ–प्रदर्शक के रूप में होना चाहिए।

(5) सभी छात्रों को इन क्रियाओं में भाग लेने के समान अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।

(6) सभी छात्रों को किसी न किसी पाठ्य सहगामी क्रिया में भाग लेना अनिवार्य किया जाना चाहिए।

(7) कक्षा–शिक्षण एवं पाठ्य सहगामी क्रियायें एक दूसरे की पूरक हैं। अतः दोनों के बीच तार्किक समन्वय होना चाहिए।

(8) कार्यक्रम रचनात्मक होने चाहिए।

(9) पाठ्य सहगामी क्रियाओं की योजना बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए वह छात्रों को बोझ की तरह न लगे।

(10) पाठ्य सहगामी कियाओं की योजना बनाते समय उसमें छात्रों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

(11) छात्रों को भी पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन करने हेतु प्रेरित करना चाहिए।

(12) छात्रों को अपनी रूचि के पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भाग लेना चाहिए।

(13) पाठ्य सहगामी गतिविधियाँ साध्य न होकर साधन होनी चाहिए।

(14) पाठ्य सहगामी गतिविधियाँ छात्रों के व्यक्तित्व विकास में सहायक होनी चाहिए।

(15) पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन अध्यापक की देखरेख में होना चाहिए।

(16) पाठ्य सहगामी क्रिया का उद्देश्य छात्रों को पूर्व मे ही बता देना चाहिए। इससे छात्रों को लक्ष्य के प्रति स्पष्टता रहेगी।

(17) विद्यालय मे आयोजित होने वाली पाठ्य सहगामी क्रियाओं का पर्याप्त प्रचार–प्रसार होना चाहिए, जिससे प्रत्येक छात्र अपनी रूची व क्षमता के अनुसार पाठ्य सहगामी क्रिया का चयन कर सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. वाणिज्य में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का छात्रों के लिए क्या महत्व है?

....

....

....

2. वाणिज्य परिषद क्या है? स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

3. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के कौन कौन से प्रकार हैं?

....

....

....

7.5 सारांश

किसी भी बालक की प्रथम शिक्षिका उसकी माँ होती है। बाद में बच्चा अपने परिवार, पास–पड़ोस एवं अन्य संस्थाओं से सीखता है। इस प्रकार उसकी शिक्षा की शुरूआत अनौपचारिक तरीके से होती है। बाल्यावस्था में छात्र अपने हम उम्र साथियों के साथ खेलते व अन्य क्रियायें करते हुए सीखता है। यह सब क्रियायें अ–औपचारिक शिक्षा का स्रोत हैं। विद्यालय में बालक के व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास में पाठ्य सहगामी क्रियायें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इनमें खेलकूद, क्विज, भाषण, लेखन, साहित्यसभा, वाल–पत्रिका, एन0सी0सी0, एन0एस0एस0 वाणिज्य परिषद, कौशल प्रशिक्षण इत्यादि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वर्तमान समय में छात्रों को अध्ययन के दौरान ही उनकी रूचि के अनुसार किसी एक कौशल का प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है। यह सब पाठ्य सहगामी क्रियायें छात्र के सर्वांगीण विकास एवं सीखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसे वर्तमान समय में शिक्षा का अनिवार्य अंग मान लिया गया है।

7.6 अभ्यास के प्रश्न

1. वाणिज्य शिक्षण में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का महत्व स्पष्ट कीजिए।
2. वाणिज्य शिक्षण हेतु प्रमुख पाठ्य सहगामी क्रियाओं पर प्रकाश डालिए।
3. वाणिज्य शिक्षण में कौशल प्रशिक्षण के महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. अधिगम की अ–औपचारिक पद्धति की उपयोगिता को रेखांकित कीजिए।

7.7 चर्चा के बिन्दु

1. पाठ्य सहगामी क्रियाओं एवं अ–औपचारिक अधिगम की अन्योन्याश्रितता के विषय में चर्चा कीजिए।
2. पाठ्य सहगामी क्रियाओं में एन0सी0सी0 एवं एन0एस0एस0 के महत्व पर चर्चा कीजिए।
3. पाठ्य सहगामी क्रियाओं की योजना एवं प्रशासन के महत्व पर चर्चा करें।

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. पाठ्य सहगामी क्रियायें छात्रों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। यह छात्रों को समूह में कार्य करते हुए सीखने का अवसर प्रदान करती हैं। इससे छात्रों के अर्न्तनिहित गुणों के प्रकटीकरण का अवसर प्राप्त होता है।
2. शिक्षण संस्थानों में विभिन्न अनुशासनों की पाठ्य सहगामी गतिविधियों के सुचारू रूप से संचालन हेतु विद्यार्थियों को लेकर परिषद का गठन किया जाता है। यह परिषद ही वर्षभर चलने वाली पाठ्य सहगामी क्रियाओं के संचालन हेतु उत्तरदायी होता है। इससे छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना एवं नेतृत्व कौशल के गुणों का विकास होता है। वाणिज्य परिषद भी अपने तत्वावधान में अनेक शैक्षिक क्रियाओं का संचालन कर विषय के अध्ययन–अध्यापन को सरल तथा प्रभावी बनाती हैं।
3. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के प्रकार–

    (क) सहित्यिक क्रियायें

    (ख) शारीरिक क्रियायें

    (ग) शैक्षिक क्रियायें

    (घ) शिल्पकला क्रियायें

    (ड़) सामान्य क्रियायें

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकं

1. त्यागी, गुरसरन दास (2012),' वाणिज्य शिक्षण,' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज (2017),' वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ– 250001
3. माथुर, एस0एस0, (1994),' शिक्षण कला,' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001
5. सिंह, आर0पी0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'पेडागागी आफ स्कूल सब्जेक्ट कामर्स,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001

इकाई 08 : वाणिज्य अधिगम में अभिक्रमित अनुदेशन

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 इकाई के उद्देश्य
8.3 अभिक्रमित अनुदेशन का विकास
8.4 अभिक्रमित अनुदेशन का अर्थ
8.5 अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएँ
8.6 अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धान्त
8.7 अभिक्रमित अनुदेशन के प्रकार
8.7.1 रेखीय अभिक्रम
8.7.2 शाखीय अभिक्रम
8.7.3 मेथेटिक्स अभिक्रम
8.8 सारांश
8.9 अभ्यास के प्रश्न
8.10 चर्चा के बिन्दु
8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

तकनीकी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दखल दिया है। अधिगम–अध्यापन का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। अभिक्रमित अनुदेशन शिक्षण तकनीकी की ही देन है। यह अनुदेशन प्रणाली पर आधारित होता है। समय के साथ–साथ इसका तीव्र गति से विकास होता जा रहा है। आज के समय में आनलाइन शिक्षा, शिक्षण ऐप, दूरदर्शन एवं रेडियो पर शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण एवं मशीन इसके प्रमुख उदाहरण है। आडियो–विडियो रिकार्डिंग, समय, स्थान एवं भौतिक रूप से उपस्थिति की बाध्यता के अंत ने शिक्षण तकनीकी को नये शिखर पर पहुँचा दिया हैं। इससे छात्रों को अपनी सुविधानुसार अपनी गति से सीखने का अवसर मिलता है। छात्रों को उनकी प्रतिक्रिया पर तत्काल पृष्ठपोषण प्राप्त होता हैं। जिससे उनको पुनर्बलन मिलता है। कम्प्यूटर शिक्षण मशीन एवं लाइव कक्षा आज की शिक्षा प्रणाली के अंग बनते जा रहे हैं। आगे हम वाणिज्य अधिगम में अभिक्रमित अनुदेशन के विकास एवं उपयोग का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

8.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. अभिक्रमित अनुदेशन की प्रणाली के विकास पर प्रकाश डाल सकेंगे।
2. अभिक्रमित अनुदेशन को परिभाषित कर सकेंगे।
3. अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएँ बता सकेंगे।
4. अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धान्तों को समझा सकेंगे।
5. रेखीय अभिक्रम के गुण बता सकेंगे।

6. रेखीय अभिक्रम की सीमाएँ बता सकेंगे।
7. शाखीय अभिक्रम की विशेषताएँ बता सकेंगे।
8. मेथेटिक्स अभिक्रम की आलोचनात्मक विवेचना कर सकेंगे।

8.3 अभिक्रमित अनुदेशन का विकास

अभिक्रमित अनुदेशन का विकास हारवर्ड विश्वविद्यालय अमेरिका के प्रो०बी०एफ० स्किनर द्वारा किया गया। प्रो0 स्किनर ने अपने अधिगम सिद्धान्त 'सक्रिय अनुबंधन अनुक्रिया सिद्धान्त' के व्यवहारिक पहलू को साकार करने के लिए शिक्षण मशीन का आविष्कार किया। इस शिक्षण मशीन में अधिगम की जिस नवीन तकनीकी का विकास किया गया उसे अभिक्रमित अनुदेशन कहा गया। प्रो० बी०एफ० स्किनर ने सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त का उपयोग करके 'सक्रिय अनुबंधन उपक्रिया शिक्षण प्रतिमान' (Operant conditioning model of teaching) का विकास किया। प्रो० बी०एफ० स्किनर ने अपने सिद्धान्त का उल्लेख 1931 ई0 में अपनी पुस्तक 'The concept of reflex in the Description of Behaviour' में किया है। सक्रिय अनुबंधन अनुक्रिया सिद्धान्त के अनुसार प्राणी द्वारा की जाने वाली अनुक्रियाओं को दो वर्गों में विभक्त किया गया है–

(अ) उद्दीपक प्रसूत तथा (ब) क्रियाप्रसूत।

उद्दीपक प्रसूत वे अनुक्रियायें हैं जो किसी ज्ञात के प्रति होती है। क्रिया प्रसूत वे अनुक्रियायें हैं जिनका उद्दीपक अज्ञात होता है। प्रो० बी०एफ० स्किनर ने अपने अधिगम सिद्धान्त में इस बात पर कोई बल नहीं दिया कि प्राणी अनुक्रिया किस उद्दीपक के कारण कर रहा है। वरन् उन्होंने इस तथ्य पर बल दिया कि प्राणी की अनुक्रिया क्या है? और उसे कैसे प्रभावी बनाया जा सकता है? स्किनर के अनुसार पुनर्बलन द्वारा क्रिया प्रसूत की शक्ति या बारम्बारता में वृद्धि ही अधिगम है। इस प्रकार उन्होंने अपने अधिगम के सिद्धान्त में पुनर्बलन को अधिक महत्व दिया। इस सिद्धान्त को व्यवहारिक अधिगम परिस्थितियों में उपयोग करने के लिए स्किनर ने 'अभिक्रमित अधिगम' का विकास किया ।

8.4 अभिक्रमित अनुदेशन का अर्थ

'अभिक्रमित' शब्द का अर्थ है –क्रमबद्ध या योजनाबद्ध। इस प्रकार क्रमबद्ध या योजनाबद्ध अधिगम में छात्रों के समक्ष विषयवस्तुओं को अनेक छोटे–छोटे तथा नियोजित खण्डों अथवा सोपानों में प्रस्तुत किया जाता है। इसकी संरचना में शिक्षण सूची का अनुसरण किया जाता है। इसमें छात्र स्वयं ज्ञान प्राप्त करता हुआ ज्ञात से अज्ञात की ओर अग्रसर होता है। इस प्रयास में छात्र को उसके द्वारा किये गये कार्य की तुरन्त पुष्टि भी करा दी जाती है। प्रत्येक सही अनुक्रिया पर उसे सफलता की अनुभूति करायी जाती है। जिससे उसके प्रयास को पुनर्बलन प्राप्त होता है। ड्यूमॉस व बेकनर के अनुसार ''यह विचार वास्तव में नया नहीं है पर इसको उपयोगी बनाने के लिए जिस टेक्नोलॉजी का प्रयोग किया जाता है, वह नवीन एवं उत्कृष्ट है। इसके अलावा इसमें वैयक्तिक अध्ययन पर बल दिया जाता है। साथ ही छात्रों को वह साज–सज्जा एवं सामग्री प्रदान की जाती है जो उन्हें अपनी स्वयं की गति एवं योग्यता के अनुसार ज्ञान प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करती है।'' अभिक्रमित अनुदेशन तथा अभिक्रमित अधिगम को प्रायः एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है क्योंकि अधिगम की सफलता अनुदेशन पर आधारित है। शिक्षण की दृष्टि से जब तक अनुदेशनों पर ध्यान दिया जाता है तब तक यह 'अभिक्रमित अनुदेशन' का रूप होता है और जब छात्र इन अनुदेशन के आधार पर कुछ सीखने का प्रयास करता है तब यह अभिक्रमित अधिगम कहलाता है। बी0एफ0 स्किनर के अनुसार "अभिक्रमित अध्ययन या अधिगम शिक्षण की कला तथा सीखने का विज्ञान है।''

8.5 अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएँ

अभिक्रमित अनुदेशन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. यह एक वैयक्तिक अनुदेशन की विधि है।
2. इसमें विषयवस्तु को छोटे–छोटे पदों में विभक्त करके छात्रों के लिए सरल एवं सुग्राह्य बनाया जाता है।
3. पदों की श्रृंखला का निर्माण किया जाता है।

4. पदों की रचना में पुनर्बलन के सिद्धान्त का ध्यान रखा जाता है।
5. छात्र के प्रारम्भिक व्यवहार एवं अंतिम व्यवहार को महत्व दिया जाता है।
6. अधिगमकर्ता को अपनी गति से सीखने का अवसर मिलता है।
7. अधिगमकर्ता को अधिगम प्रतिपुष्टि सीखने के तुरन्त बाद ही पता चल जाती है।
8. अभिक्रमित अधिगम में छात्र सक्रिय रहता है।
9. अभिक्रमित अधिगम में शिक्षक की भूमिका स्लाइड का निर्माण, अधिगम प्रभावोत्पादकता एवं उसमें सुधार की होती है।
10. अभिक्रमित अधिगम में शिक्षक छात्र का प्रत्यक्ष संपर्क नहीं होता है।
11. अभिक्रमित अधिगम एक स्व–अध्ययन विधि है।
12. यह अनुदेशन तकनीकी का शिक्षा में प्रयोग है।

8.6 अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धान्त

विभिन्न विद्वानों ने अभिक्रमित अधिगम की रचना हेतु सिद्धान्तों का निर्माण किया है। इनमें बी०एफ० स्किनर (1960) एवं राबर्ट मेयर (1962) आदि का नाम प्रमुख है। एडवर्ड एफ0ओ0डे० ने सभी शिक्षाशास्त्रियों के सिद्धान्तों का अध्ययन करके अभिक्रमित अधिगम के सिद्धान्तों को दो भागों में बाँटा। जो इस प्रकार है–

1. प्रमुख सिद्धान्त
2. गौण सिद्धान्त

अभिक्रमित अधिगम के प्रमुख सिद्धान्त–

इसकी प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं–

1. उददेश्यों के स्पष्टीकरण का सिद्धान्त
2. आनुभविक मूल्यांकन का सिद्धान्त
3. व्यक्तिगत प्रयास का सिद्धान्त
4. लघु पद प्रयास का सिद्धान्त
5. क्षेत्रीय अनुभव का सिद्धान्त
6. स्वगति का सिद्धान्त

अभिक्रमित अधिगम के गौण सिद्धान्त–

इसकी प्रमुख गौण सिद्धान्त निम्नवत् हैं–

1. वाह्यप्रत्युत्तर का सिद्धान्त
2. आशु पृष्ठ–पोषण का सिद्धान्त
3. लघु सोपानों का सिद्धान्त
4. क्रमबद्धता का सिद्धान्त
5. पुष्टि का सिद्धान्त

बी०एफ० स्किनर द्वारा बताये गये सिद्धान्त–

बी०एफ० स्किनर द्वारा बताये गये अभिक्रमित अनुदेशन सिद्धान्तों का विवेचन इस प्रकार है–

(1) लघुपदों का सिद्धान्त

अभिक्रमित अधिगम में विषयवस्तु को छोटे–छोटे पदों में विभक्त किया जाता है। ये पद अर्थपूर्ण होते हैं। स्किनर का कहना है कि विषयवस्तु को छोटे–छोटे पदों में विभक्त करके प्रयास करने से सीखने में सहायता मिलती है। विषयवस्तु के इस छोटे पद या अंश को फ्रेम कहा जाता है। ये पद एक दूसरे से श्रृंखला के रूप में जुड़कर सम्पूर्ण विषयवस्तु प्रस्तुत करते हैं।

(2) सक्रिय अनुक्रिया का सिद्धान्त

अधिगम सिद्धान्तों ने इस बात की पुष्टि की है कि अधिगम के समय यदि छात्र सक्रिय रहता है तो अधिगम का स्तर ऊँचा उठता है। विषयवस्तु के साथ छात्र जब सक्रिय अनुक्रिया करता है तब वह सरलता से सीखता है। इस सिद्धान्त का उपयोग अभिक्रमित अनुदेशन में भी किया जाता है।

(3) तुरन्त प्रतिपुष्टि का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त बतलाता है कि यदि छात्र को अधिगम की प्रतिपुष्टि तत्काल मिलता है तो अधिगम में सहायता मिलती है। छात्र अभिक्रमित अध्ययन सामग्री में उपलब्ध सही उत्तर को देखकर अपने उत्तर की पुष्टि कर सकता है। इससे छात्र को आन्तरिक संतुष्टि एवं बल प्राप्त होता है। जिसके फलस्वरूप सीखने की गति एवं मात्रा बढ़ जाती है। इस तरह से परिणामों की जानकारी पुनर्बलन का कार्य करती है।

(4) स्व–गति का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त सीखने में व्यक्तिगत भिन्नता का सम्मान करता है। इसके अनुसार प्रत्येक छात्र की अपनी बुद्धि, क्षमता व रूचि के अनुसार सीखने की गति भिन्न–भिन्न होती है। इसमें सभी छात्रों को अपनी अपनी गति के अनुसार सीखने की स्वतंत्रता होती है।

(5) छात्र परीक्षण (स्वपरीक्षण) का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने वाले को स्वयं से यह परीक्षण करने का अवसर होना चाहिए कि उसने कितना सीखा और कितना सीखना शेष हैं। इसके माध्यम से शिक्षक छात्रों की कमजोरियों/कमियों को जानकर उसका उपयुक्त उपचार कर सकता है।

8.7 अभिक्रमित अनुदेशन के प्रकार

अभिक्रमित अनुदेशन के मुख्यतः तीन प्रकार है–

(क) रेखीय अनुदेशन

(ख) शाखीय अनुदेशन

(ग) मेथेटिक्स अनुदेशन

8.7.1 रेखीय अनुदेशन

मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् बी०एफ०स्किनर द्वारा प्रतिपादित अभिक्रमित अनुदेशन प्रणाली को रेखीय या श्रृंखला अभिक्रमित अनुदेशन के नाम से जाना जाता है। इस विधि को रेखीय अभिक्रम इसलिए कहा जाता है कि इसमें विषयवस्तु के लघु पदों/फेम को एक श्रृंखला में क्रमशः प्रस्तुत किया जाता है। स्किनर के अनुसार अभिक्रमित अनुदेशन में विषयवस्तु के छोटे–छोटे पदों की श्रृंखला को पुनर्बलन का प्रयोग करके प्रस्तुत किया जाता है। जिससे प्रारम्भिक व्यवहार से आरम्भ करके अंतिम व्यवहार तक पहुँचा जा सके। इसी कारण रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन को 'प्रोगेसिव चेनिंग' कहा जाता है। बी०एफ०स्किनर ने अपने प्रसिद्ध प्रयोग से यह सिद्ध किया कि प्राणी के सक्रिय व्यवहार को धीरे–धीरे वांछित व्यवहार में (पुनर्बलन के प्रयोग से) परिवर्तित किया जा सकता है। उनके अनुसार रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन 'व्यवहार परिमार्जन' की एक प्रमुख विधि है। रेखीय प्रोग्राम में जो फ्रेम बनाये जाते हैं। वे एक सीधी श्रृंखला में होते हैं। प्रत्येक अगला फ्रेम पिछले फ्रेम से जुड़ा (विषय वस्तु की दृष्टि से) होता है। इस विधि में किसी भी फ्रेम के पूरक फ्रेम नहीं होते हैं। इसमें विद्यार्थी को रेखीय अभिक्रम निर्माता के अनुरूप ही अधिगम श्रृंखला में आगे बढ़ना होता है। यही कारण है कि इसे वाह्य

अनुदेशन भी कहा जाता है।

8.7.1.1 रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धान्त

1. इस अभिक्रम में विषयवस्तु को सरल तथा सुग्राह्य रूप में छोटे–छोटे पदों में प्रस्तुत किया जाता है।
2. प्रत्येक सही अनुक्रिया छात्र को पुनर्बलन प्रदान करती है।
3. छात्र को अनुक्रिया के तुरन्त बाद प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।
4. प्रतिपुष्टि व पुनर्बलन के कारण विद्यार्थी तेजी से सीखते हैं।
5. विषयवस्तु को क्रमबद्ध करते समय सूत्रों का प्रयोग किया जाता है।
6. छात्र स्वप्रेरणा से अपनी बुद्धि व क्षमता के अनुरूप सीखता है।

8.7.1.2 रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन के गुण

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन के गुण इस प्रकार है–

(1) रेखीय अनुदेशन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होता है।

(2) इससे छात्रों को वैयक्तिक भिन्नता के अनुसार सीखने का अवसर मिलता है।

(3) रेखीय अनुदेशन में विषयवस्तु को छोटे–छोटे पदों में विभक्त करके तार्किक क्रम में प्रस्तुत किया जाता है।

(4) इसमें अधिगम के दौरान प्रत्येक फ्रेम के अंत में अधिगम स्तर की जाँच की जाती है और तुरन्त प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

(5) रेखीय अनुदेशन में कठिन विषयों को भी शिक्षण सूत्रों की सहायता से सुग्राह्य बनाया जाता है।

(6) यह विधि पत्राचार पाठ्यचर्या के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

(7) इस विधि से सीखते समय छात्र तत्पर तथा सक्रिय बना रहता है।

8.7.1.3 रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन की कमियाँ

(1) रेखीय अधिगम विधि उच्च मानसिक स्तर वाले छात्रों के लिए अरूचिकर एवं नीरस साबित होती है

(2) इसमें छात्रों को रेखीय अनुक्रम में ही आगे बढना होता है।

(3) इसमें छात्रों को स्वतंत्र चिन्तन हेतु अवसर नहीं होता है।

(4) यह विधि सभी विषयों के लिए समान रूप से उपयोगी नहीं है।

(5) इसका निर्माण विशेषज्ञ व्यक्ति ही कर सकता है।

(6) फ्रेम के निर्माण में काफी समय लगता है।

(7) इसमें छात्रों की गलतियों पर निदान एवं उपचार हेतु कोई व्यवस्था नहीं है।

8.7.2 शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन

शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन के विकास का श्रेय नार्मन ए. क्राउडर को है। इसी कारण शाखीय अनुदेशन को इनके नाम पर क्राउडेरियन अनुदेशन भी कहा जाता है। इसे आन्तरिक अनुदेशन के नाम से जाना जाता है। क्योंकि इसमें अध्ययनकर्ता को स्वनिर्णय करके आगे बढ़ना होता है। इसमें छात्र को एक फ्रेम पढ़ने के लिए दिया जाता है और तदुपरान्त उससे प्रश्न पूछा जाता है। जिसको पढ़कर विद्यार्थी उपलब्ध विकल्पों में से सही विकल्प का चुनाव करता है। यदि छात्र गलत उत्तर चुनता है तो उसको उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करने के लिए दूसरा फ्रेम पढ़ने को कहा जाता है। इस फ्रेम पर गलत उत्तर चुनने का कारण बताया जाता है। अतः इस फ्रेम को पढ़ने के बाद छात्र पुनः उत्तर देता है। अगर इस बार छात्र का उत्तर सही होता है तो उसे अगला

फ्रेम पढ़ने को मिलता है। इस प्रकार शाखीय अनुदेशन में निदान एवं उपचार के माध्यम से अनुदेशन को प्रभावी बनाया जाता है।

8.7.2.1 शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धान्त

1. शाखीय अनुदेशन के प्रश्नों का उद्‌देश्य निदान करना होता है न कि परीक्षण करना ।
2. शाखीय अनुदेशन में निदान के बाद उपचार की व्यवस्था की जाती है।
3. इसमें छात्रों द्वारा की गयी गलतियों के बारे में निर्देशन प्रदान किया जाता है।
4. इसमें बहुविकल्पिय उत्तर वाली प्रश्नावली परीक्षण हेतु तैयार की जाती है।
5. गलत उत्तर देने पर उसके कारणों को छात्रों को समझाया जाता है।

8.7.2.2 शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएँ

1. रेखीय अनुदेशन की अपेक्षा शाखीय अनुदेशन के फ्रेम बड़े होते हैं।
2. इसकी रचना इस प्रकार की जाती है कि छात्र को अपनी गलतियों का कारण अगले फ्रेम में पता चल जाता है।
3. इस विधि में छात्रों के उपचारात्मक अनुदेशन की व्यवस्था होती है।
4. इसमें अनुक्रिया तथा उसके क्रम पर छात्र का नियंत्रण होता है।
5. इसमें छात्र को तुरन्त पृष्ठपोषण दिया जाता है।

8.7.2.3 शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन की सीमाएँ

शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन की सीमाएँ निम्नलिखित है–

1. अभिक्रमित अनुदेशन की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें अनुमान से विकल्प चुनने की संभावना बनी रहती है।
2. शाखीय अनुदेशन अपनी जटिलता के कारण कभी–कभी बोझिल व अरूचिकर हो जाता है।
3. शाखीय अनुदेशन छोटी कक्षाओं के लिए उपयोगी नहीं है।
4. शाखीय अनुदेशन का निर्माण एक विशेषज्ञ आचार्य ही कर सकता है।
5. इसमें विषयवस्तु का आकार बड़ा हो जाता है।

8.7.3 मेथेटिक्स अभिक्रमित अनुदेशन

मेथेटिक्स शब्द यूनानी भाषा के मैथीन शब्द से व्युत्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है सीखना। इसमें विषयवस्तु की अपेक्षा अध्ययनकर्ता की क्रियाओं पर अधिक बल दिया जाता है। जिस प्रकार रेखीय अभिक्रम का लक्ष्य व्यवहार परिवर्तन करना है। शाखीय अभिक्रम का लक्ष्य उपचार करना है उसी तरह मेथेटिक्स या अवरोही अभिक्रम का लक्ष्य पाठ्य वस्तु का स्वामित्व प्राप्त करना है। मेथेटिक्स अभिक्रमित अनुदेशन का विकास थामस एफ० गिलबर्ट ने किया है। रेखीय व शाखीय अभिक्रम में आरोही क्रम मे पदों का नियोजन किया जाता है। इसके विपरीत मेथेटिक्स में शिक्षण प्रक्रिया का नियोजन इस प्रकार किया जाता है कि सीखने वाला सबसे पहले अंतिम अनुक्रिया करता है और धीरे–धीरे प्रथम अनुक्रिया की तरफ बढ़ता है। इसलिए इसे अवरोही श्रृंखला कहते हैं। इस विधि में विषयवस्तु के स्वामित्व पर बल दिया जाता है।

8.7.3.1 मेथेटिक्स अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएँ

1. मेथेटिक्स अभिक्रम में छात्र को अनुक्रियाएँ अवरोही क्रम में करनी होती है।
2. इसमें विषयवस्तु के स्वामित्व पर बल दिया जाता है।
3. इसमें उपलब्धि/स्वामित्व का निकष संदर्भ पर स्वीकृति का स्तर 90/90 है अर्थात् 90 प्रतिशत

विद्यार्थियों को 90 प्रतिशत या उससे अधिक उपलब्धि स्तर हासिल करनी चाहिए।

4. अनुक्रिया में सहायता के लिए प्रदर्शन एवं अनुबोध का प्रयोग किया जाता है।
5. छात्रों की स्वतंत्र अनुक्रिया करनी होती है।
6. इसमें फ्रेम का आकार बड़ा होता है। प्रत्येक फ्रेम में एक क्रिया के सभी पद आ जाते हैं।
7. छात्र को इसमें अंतिम व्यवहार सबसे पहले व प्रथम व्यवहार सबसे बाद में करना होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1 अभिक्रमित अनुदेशन की कौन–कौन सी विशेषताएं हैं?

....
....
....

2 रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन पर प्रकाश डालिए।

....
....
....

3 शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएँ बताइए।

....
....
....

4 मेथेटिक्स अभिक्रमित अनुदेशन पर टिप्पणी कीजिए।

....
....
....

8.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ गये होंगे कि तकनीकी विकास ने शिक्षा को किस सीमा तक प्रभावित किया है। शैक्षिक तकनीकी के विकास के फलस्वरूप अधिगम एवं शिक्षण का पूरा परिदृश्य ही बदल गया है। शिक्षण मशीनों के विकास से अब छात्र को अपनी वैयक्तिक भिन्नता, सुविधा एवं गति के अनुसार सीखने के अवसर उपलब्ध हैं। इसने शिक्षण में अध्यापक का महत्व कम किया है। हालांकि शिक्षण मशीन/अभिक्रमित अनुदेशन छात्र का ज्ञानात्मक विकास भले ही कर सके किन्तु उसका भावात्मक एवं मनोचालक विकास शिक्षक के सम्पर्क में रहकर ही भली प्रकार हो सकता है। अपनी पहुँच, सुविधा, पृष्ठपोषण की क्षमता, वैयक्तिक भिन्नता के कारण अभिक्रमित अनुदेशन का शिक्षण–अधिगम में महत्व धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है। आनलाइन शिक्षा एवं लर्निंग ऐप ने शिक्षा का पूरा परिदृश्य ही बदल दिया है। आगे आने वाले समय में शैक्षिक तकनीकी के विकास के फलस्वरूप हम सभी और परिवर्तनों के साक्षी बनेंगे।

8.9 अभ्यास के प्रश्न

1. अभिक्रमित अनुदेशन के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. अभिक्रमित अनुदेशन को परिभाषित कीजिए।
3. अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएँ बताइये।
4. रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन के गुण बताइये।
5. रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन के अवगुण बताइये।
6. शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन के गुण व अवगुण पर प्रकाश डालिए।
7. मेथेटिक्स अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताएँ बताइये।

8.10 चर्चा के बिन्दु

1. अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताओं पर चर्चा कीजिए।
2. अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धान्तों के बारे में चर्चा करें।
3. रेखीय अभिक्रम की सीमाओं पर चर्चा करें।
4. शाखीय अभिक्रम की विशेषताओं पर चर्चा करे।
5. मेथेटिक्स अभिक्रम पर चर्चा करें।

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अभिक्रमित अनुदेशन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् है–

   (क) यह वैयक्तिक अनुदेशन की विधि है।

   (ख) इसमें विषयवस्तु को छोटे–छोटे पदो में विभक्त कर छात्रों के लिए बोधगम्य बनाया जाता है।

   (ग) अधिगमकर्ता को अपनी गति से सीखने का अवसर मिलता है।

   (घ) अनुक्रिया के तुरन्त बाद प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।
2. स्किनर द्वारा विकसित अनुदेशन प्रणाली को रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन कहा जाता है। इसमें विषयवस्तु को छोटे–छोटे फ्रेम पर एक श्रृखलाबद्ध ढंग से छात्र के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। छात्र के सही अनुक्रिया पर तुरन्त प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।
3. नार्मन ए क्राउडर ने शाखीय अभिक्रमत अनुदेशन का विकास किया है। इसे आन्तरिक अनुदेशन भी कहते है। इसमें अध्ययनकर्ता को आत्मनिर्णय के अनुसार आगें बढ़ना होता है।
4. मेथेटिक्स शब्द को यूनानी भाषा के मैथीन शब्द से लिया गया है। इसमें विषयवस्तु की अपेक्षा अध्ययनकर्ता की क्रियाओं पर अधिक बल दिया जाता है। मेथेटिक्स अभिक्रमित अनुदेशन का विकास थामस एफ0 गिलबर्ट ने किया है।

8.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. शर्मा, आर0ए0 (2001),' शिक्षण तकनीकी,' आर0 लाल बुकडिपो, मेरठ।
2. त्यागी, गुरसरन दास (2012),' वाणिज्य शिक्षण,' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. कुलश्रेष्ठ, एस0पी0 (2012),' शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार,' श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्यिाज, (2017),' वाणिज्य शिक्षण,' आर0 लाल बुकडिपो, मेरठ।

इकाई 09 : वाणिज्य शिक्षण में नवीन उपागम

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 इकाई के उद्देश्य

9.3 सूक्ष्म शिक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

9.4 सूक्ष्म शिक्षण से आशय

9.5 सूक्ष्म शिक्षण की परिभाषा

9.6 सूक्ष्म शिक्षण के सोपान

9.7 सूक्ष्म शिक्षण के लाभ

9.8 सूक्ष्म शिक्षण की सीमाएँ

9.9 सारांश

9.10 अभ्यास के प्रश्न

9.11 चर्चा के बिन्दु

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

वर्तमान शाताब्दी में शिक्षा का प्रसार तेजी के साथ हुआ है। स्वातंत्रयोत्तर काल में शिक्षा का संस्थाओं और नामांकन की दृष्टि से प्रसार अत्यन्त तीव्रगति से हुआ है। इस संख्यात्मक विकास को ध्यान में रखते हुए पर्याप्त शिक्षक भी नियुक्त किये गये। परन्तु शिक्षण की गुणवत्ता में कमी ही देखने को मिला। फलतः इस स्थिति से सरकार और शिक्षाविद् दोनों चिन्तित हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षण की प्रक्रिया में सुधार हेतु अनेकों शोध कार्य किये गये। शोधकार्यों के फलस्वरूप अध्यापक प्रशिक्षण की अनेक त्रुटियाँ सामने आयी, जैसे– शिक्षण प्रशिक्षण की प्रक्रिया में एकरूपता का अभाव, अस्पष्ट व्यवहारिक उद्देश्य, पर्यवेक्षण की दोषपूर्ण प्रणाली, प्रभावशाली व्यूहरचनाओं का अभाव आदि। इन त्रुटियों को दूर करने तथा शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक प्रयोगों के फलस्वरूप सूक्ष्म शिक्षण–प्रशिक्षण, मॉडल टीचिंग जैसे अनेक नवाचार सामने आये। इनमें सूक्ष्म शिक्षण विधि विश्व भर में प्रसिद्ध एवं स्वीकार्य विधि के रूप में उभर कर सामने आयी। शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में सूक्ष्म शिक्षण विधि अत्यंत कारगर साबित हुई है। इसने सामान्य कक्षा शिक्षण की जटिलताओं को कम किया। इसके साथ ही सूक्ष्म शिक्षण के माध्यम से एक समय में एक ही कौशल पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। उसमें निपुणता होने पर अगला कौशल सीखने की तरफ बढ़ा जाता है। कम समय, जटिलता की कमी, मूल्यांकन में आसानी आदि कारणों से सूक्ष्म शिक्षण कौशल की लोकप्रियता और उपयोग दिनों–दिन बढ़ती गई और आज यह विश्वभर में शिक्षक प्रशिक्षण की सर्वमान्य विधि मानी जाती है।

9.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनोपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. सूक्ष्म शिक्षण का अर्थ बता सकेंगे।
2. सूक्ष्म शिक्षण के सोपानों का वर्णन कर सकेंगे।
3. सूक्ष्म शिक्षण के लाभ समझा सकेंगे।
4. सूक्ष्म शिक्षण की सीमाएँ बता सकेंगे।

9.3 सूक्ष्म शिक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सूक्ष्म शिक्षण का प्रारम्भ अमेरिका के स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में 1961 में हुआ। यहाँ पर कीथ एचीसन ने वीडियो रिकार्डिंग का प्रयोग शिक्षक– प्रशिक्षण कार्य में किया। इससे शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में नवीन क्रांति का सूत्रपात हुआ। इस माध्यम द्वारा प्रशिक्षु शिक्षकों के शिक्षण को रिकार्ड करके उन्हें स्थिति या विशिष्ट बिन्दुओं पर निश्चित निर्देश दिये गये। इसके प्रयोग से धीरे–धीरे सभी लाभान्वित होने लगे । सन् 1963 ई0 में ए0डब्ल्यू० डवाइट एलेन ने इस उपागम की विशद् व्याख्या करके इसे सूक्ष्म शिक्षण का नाम दिया। इसके बाद में सूक्ष्म शिक्षण का विचार धीरे–धीरे पश्चिमी देशों से होते हुए सम्पूर्ण विश्व में फैल गया। सूक्ष्म शिक्षण के नवाचार को भारत में भी ग्रहण किया गया। भारत में सूक्ष्म शिक्षण विधि का प्रयोग सर्वप्रथम वर्ष 1970 में हुआ। भारत में सबसे पहले इसका प्रयोग प्रो० शाह ने तकनीकी शिक्षण–प्रशिक्षण संस्थान मद्रास में शुरू किया। इसके पश्चात प्रो भट्टाचार्य द्वारा वर्ष 1974 में कोलकाता, प्रो० दोसाध द्वारा सन् 1974 में चण्डीगढ़ मे किया गया। सन् 1975 ई० में गुजरात विद्यापीठ ने शिक्षक–प्रशिक्षकों को सूक्ष्म शिक्षण कौशल से अवगत कराने हेतु कार्यशाला का आयोजन किया। वर्ष 1975 मे ही महाराष्ट्र सरकार ने सूक्ष्म शिक्षण कौशल पर आधारित कार्यशाला का आयोजन प्रदेश के सभी शिक्षक–प्रशिक्षको को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वर्ष 1977 से इसका प्रयोग शुरू हुआ। वर्तमान समय में भारत के सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में सूक्ष्म शिक्षण विधि का प्रयोग शिक्षण कौशल सिखाने हेतु किया जा रहा है।

9.4 सूक्ष्म शिक्षण से आशय

सूक्ष्म शिक्षण छोटी अवधि का शिक्षण है। इसमें शिक्षण की अवधि को न्यून कर दिया जाता है। इसमें सीखने की सामग्री, पढ़ाने की अवधि तथा छात्रों की संख्या को कम कर दिया जाता है। दूसरे शब्दों में इसमें प्रशिक्षु शिक्षक 5–10 छात्रों को 5–10 मिनट तक शिक्षण देता है। इसमें प्रशिक्षु शिक्षक के अध्यापन को वीडियो टेप में रिकार्ड कर लिया जाता है। इसके द्वारा प्रशिक्षु शिक्षक को उसके निष्पादन का ज्ञान कराया जाता है। प्रशिक्षु शिक्षकों को प्रशिक्षण के समय किसी एक कौशल को केन्द्र में रखकर शिक्षण कार्य करना होता है। इसमें सहपाठी ही प्रायः छात्र की भूमिका का निर्वहन करते हैं। इस उपागम से प्रशिक्षु शिक्षक को नवीन कौशल सीखने तथा पुराने कौशल को सुधारने में सहायता मिलती है। एलेन व रियन के अनुसार सूक्ष्म शिक्षण की विशेषताएँ इस प्रकार है–

(1) सूक्ष्म शिक्षण वास्तविक शिक्षण है।

(2) सूक्ष्म शिक्षण ने प्रचलित कक्षा शिक्षण की जटिलताओं को कम कर दिया है।

(3) सूक्ष्म शिक्षण में एक विशिष्ट कौशल को सीखने पर बल दिया जाता है।

(4) सूक्ष्म शिक्षण में अभ्यास द्वारा कौशल में महारत हासिल की जाती है।

(5) सूक्ष्म शिक्षण में प्रतिपुष्टि द्वारा उपलब्धि का ज्ञान कराया जाता है।

(6) यह पूर्ण शिक्षण नहीं है।

(7) इसका प्रयोग बहुधा वास्तविक कक्षा में नहीं किया जाता है।

9.5 सूक्ष्म शिक्षण की परिभाषा

सूक्ष्म शिक्षण की प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ निम्नवत् है–

(1) ऐलन के अनुसार ''सूक्ष्म शिक्षण'' किसी कक्षा में आकार तथा समय में सूक्ष्म पदीय शिक्षण परिस्थिति है।"

(2) ईव के शब्दों में ''सूक्ष्म शिक्षण नियंत्रित कार्यों का समूह है जो कि किसी विशिष्ट शिक्षण व्यवहार पर बल देता है तथा शिक्षण अभ्यास को नियंत्रित परिस्थितियों में संभव बनाता है।''

(3) बी०के० पासी के अनुसार ''सूक्ष्म शिक्षण एक प्रशिक्षण विधा है जो छात्राध्यापकों से अपेक्षा करती है कि वे एक सम्प्रत्यय या अवधारणा, एक विशेष अध्यापन कौशल के द्वारा थोड़े से छात्रों में अल्पावधि में

पढायें।"

उपरोक्त परिभाषाओं से सूक्ष्म शिक्षण के विषय में समग्र रूप से प्रकाश पड़ता है। परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सूक्ष्म शिक्षण मे नियंत्रित परिस्थितियों मे शिक्षण कार्य किया जाता है। इसमें शिक्षण की अवधि सामान्य कक्षा की अपेक्षा काफी कम औसतन 6 मिनट की होती है। इसमें कक्षा की जटिलता को कम कर दिया जाता है। एक समय मे एक ही कौशल को सीखने पर बल दिया जाता है। जब तक प्रशिक्षु पूरी तरह कौशल में प्रवीण नहीं हो जाता है तब तक उसका अभ्यास करता रहता है। इसे सूक्ष्म शिक्षण चक्र कहते हैं। जब प्रशिक्षु कौशल पूरी तरह सीख जाता है तब दूसरे कौशल को सीखता हैं। इसमें उसके साथी प्रशिक्षु ही छात्र की भूमिका में होते हैं तथा पृष्ठपोषण प्रदान करते हैं। इसमे कक्षा का आकार तथा समयावधि दोनो छोटी होती है।

9.6 सूक्ष्म शिक्षण के सोपान

सूक्ष्म शिक्षण निम्नलिखित चरणों सम्पन्न होता है–

(1) शिक्षण कौशल का सैद्धान्तिक विवेचन–

इसके अंतर्गत सर्वप्रथम प्रशिक्षुओं को शिक्षण कौशल की परिभाषा कार्यात्मक उद्देश्यों की परिभाषा, कौशल का महत्व तथा कौशल पर अधिकार करने में सहायक घटकों आदि के संदर्भ में सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाता है। इस सोपान में कौशल के मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी स्पष्ट किया जाता है।

(2) विशिष्ट शिक्षण कौशल की विवेचना–

इस सोपान में जिस शिक्षण कौशल में प्रवीणता हासिल करनी होती है उसका चयन किया जाता है। चयनित शिक्षण कौशल के व्यवहारों को परिभाषित किया जाता है। इस स्तर पर उन उद्देश्यों को भी स्पष्ट किया जाता है, जिनको प्राप्त करना इन व्यवहारों का लक्ष्य है।

(3) आदर्श पाठ का प्रस्तुतीकरण–

इस पद में अभ्यास से सम्बन्धित वीडियो टेप या फिल्म प्रदर्शित किये जाते हैं। कभी–कभी प्रशिक्षु को लिखित सामग्री भी दी जाती है। यह सब उसे प्रदर्शित करने के पीछे यह ध्येय होता है कि प्रशिक्षु को यह पता चल सके कि विशिष्ट कौशल को किस प्रकार सीखना है।

(4) पाठ का आयोजन–

इस सोपान में छात्राध्यापक 5 से 7 मिनट की शिक्षण योजना बनाता है। जिसमें वह विशिष्ट कौशल का प्रयोग करते हुए सीख सके।

(5) शिक्षण कार्य–

इसमें छात्राध्यापक एक छोटे समूह को पाठ योजना के अनुसार पढ़ाता है। इस शिक्षण कार्य को साथियों द्वारा आडियो या वीडियो के रूप में रिकार्ड कर लिया जाता है। शिक्षणकार्य पूर्ण होने पर छात्राध्यापक को प्रतिपुष्टि के साथ रिकार्डिंग देखने/सुनने के लिए दी जाती है ताकि वह अपेक्षित सुधार कर सके।

(6) प्रतिपुष्टि–

इस सोपान में छात्राध्यापक की उपस्थिति में रिकार्डिंग को चलाकर पर्यवेक्षक की टीकाओं के साथ यह बताया जाता है कि उसका निष्पादन कैसा रहा। इस तरह से इस स्तर पर प्रशिक्षु को यह पता चल जाता है कि उसके शिक्षण की वर्तमान स्थिति क्या है, उसे कहाँ कहाँ पर सुधार करना आवश्यक है।

(7) पाठ का पुनः आयोजन–

छात्राध्यापक प्रतिपुष्टि तथा पर्यवेक्षक द्वारा की गयी समीक्षा के आधार पर पाठ का पुनः आयोजन करता है जिससे वह कौशल को अच्छे से सीख सके।

(8) पुनः शिक्षण–

इस सोपान में प्रकरण को पुनः पढ़ाया जाता है और पुनः पहले की सारी प्रक्रिया दुहराई/अपनायी जाती है।

(9) पुनः प्रतिपुष्टि–

दुबारा शिक्षणोपरान्त छात्राध्यापक को पुनः प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है। जिससे छात्राध्यापक को मालूम हो सके कि वह कौशल को सीखने में कितना सफल रहा। इस तरह सूक्ष्म शिक्षण के कार्यक्रम में सोपान 5 से 9 तक की प्रक्रिया तब तक दुहराई जाती है। जब तक प्रशिक्षु कौशल में दक्षता नहीं प्राप्त कर लेता है। संक्षेप में सूक्ष्म शिक्षण के निम्नलिखित सोपान माने जाते हैं।

(1) पाठ का आयोजन/योजना

(2) शिक्षण

(3) प्रतिपुष्टि

(4) पुनः आयोजन/योजना

(5) पुनः शिक्षण

(6) पुनः प्रतिपुष्टि

सूक्ष्म शिक्षण चक्र

कौशल के अभ्यास एवं पुनः अभ्यास हेतु निर्धारित चरण होते है जिन्हे साधारणतया सूक्ष्मशिक्षण चक्र कहा जाता है। सूक्ष्म शिक्षण चक्र की अवधि 36 मिनट की होती है किन्तु यह प्रशिक्षु के कौशल मे प्रवीण होने तक गतिमान रहती है। सूक्ष्म शिक्षण चक्र समयविभाजन के साथ निम्नवत् है–

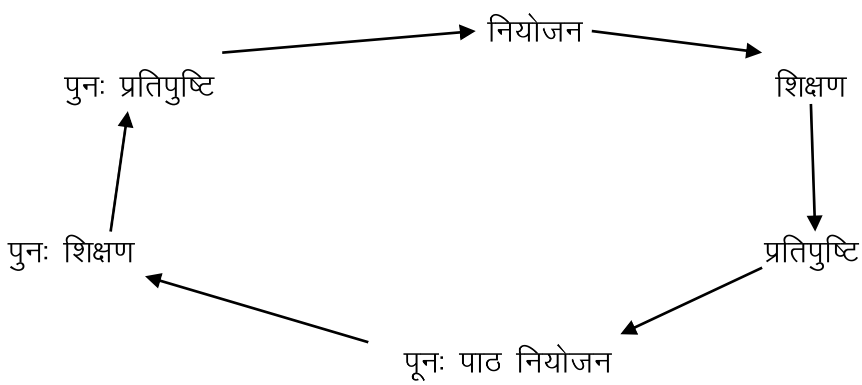

सूक्षम शिक्षण चक्र

सूक्ष्म शिक्षण चक्र का समय विभाजन

1 शिक्षण सत्र– 6 मिनट

2 प्रतिपुष्टि – 6 मिनट

3 पुनः पाठ नियोजन – 12 मिनट

4 पुनः शिक्षण सत्र – 6 मिनट

5 पुनःप्रतिपुष्टि– 6 मिनट

6 योग– 36 मिनट

9.7 सूक्ष्म शिक्षण से लाभ

(1) यह शिक्षण व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित करता है।

(2) यदि सूक्ष्म शिक्षण को उपयुक्त ढंग से निर्देशित कर दिया गया तो यह एक सफल उपागम के रूप में काम करता है।

(3) यह वास्तविक शिक्षण है जो समान्य शिक्षण कला की जटिलताओं को कम करता है।

(4) यह शिक्षक प्रशिक्षण को वैयक्तिक बनाने में सहायक है।

(5) यह पर्यवेक्षक को शक्तिशाली बनाता है।

(6) इसमें छात्राध्यापक विभिन्न कौशलों का पूर्ण अभ्यास करके उनके उपयोग की विधि से परिचित हो जाता है।

(7) सूक्ष्म शिक्षण का प्रयोग शिक्षण काल में उपचारात्मक विधि के रूप में किया जा सकता है।

9.8 सूक्ष्म शिक्षण की सीमाएँ

प्रत्येक शिक्षण विधा की तरह सूक्ष्म शिक्षण की भी अपनी कुछ सीमाएँ हैं जो इस प्रकार है–

(1) सूक्ष्म कक्षाओं का निर्माण व समय तालिका की व्यवस्था करना कठिन है।

(2) सूक्ष्म शिक्षण की प्रयोगशाला सामग्री एवं साज–सज्जा को सभी प्रशिक्षण विद्यालयों में उपलब्ध नहीं कराया जा सकता।

(3) प्रशिक्षित पर्यवेक्षकों का अभाव भी इसके लिए एक चुनौती है। अंत में बी०के० पासी के शब्दों में ''सूक्ष्म शिक्षण को शिक्षण कौशलों के प्रशिक्षण के लिए निदानात्मक तथा उपचारात्मक साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। उसे व्यापक शिक्षण का विकल्प नहीं अपितु पूरक उपागम के रूप में प्रयुक्त करना चहिए। यह मितव्ययी तथा दक्षतापूर्ण होते हुए भी सब कुछ नहीं है।''

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. सूक्ष्म शिक्षण के विकासक्रम पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

2. सूक्ष्म शिक्षण के सोपान कौन–कौन से है?

....

....

....

3. सूक्ष्म शिक्षण के लाभ बतायें।

....

....

4. सूक्ष्म शिक्षण की सीमाएँ बताइये।

....

....

9.9 सारांश

शिक्षण कौशलों का अभ्यास एवं उनके प्रयोग में निपुणता प्रत्येक अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। सूक्ष्म शिक्षण कौशलों का अभ्यास एवं शिक्षकीय कौशल विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनकी मदद से प्रशिक्षण देकर कौशल युक्त शिक्षक तैयार किये जाते है, जो अच्छे शिक्षक साबित होते है। इस इकाई में इसी सूक्ष्म शिक्षण कौशल के बारे में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत इस इकाई में सूक्ष्म शिक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सूक्ष्म शिक्षण से आशय, सूक्ष्म के सोपान, सूक्ष्म शिक्षण के लाभ और सूक्ष्म शिक्षण की सीमाओं पर व्यापक चर्चा की गयी है। इसका प्रयोग विश्वभर में शिक्षक प्रशिक्षण हेतु व्यापक पैमाने पर किया जा रहा है।

9.10 अभ्यास के प्रश्न

1. सूक्ष्म शिक्षण को परिभाषित कीजिए।
2. सूक्ष्म शिक्षण के क्या लाभ हैं?
3. सूक्ष्म शिक्षण की सीमाओं पर प्रकाश डालिए।
4. सूक्ष्म शिक्षण के सोपानों का वर्णन कीजिए।
5. सूक्ष्म शिक्षण चक्र को दर्शाइये।

9.11 चर्चा के बिन्दु

1. शिक्षण प्रशिक्षण की योजना में सूक्ष्म शिक्षण के महत्व पर चर्चा करें।
2. सूक्ष्म शिक्षण के सोपान पर चर्चा करें।
3. सूक्ष्म शिक्षण की उपयोगिता के विषय में चर्चा करें।
4. सूक्ष्म शिक्षण की सीमाओं के सन्दर्भ में चर्चा करें।

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सूक्ष्म शिक्षण का विकास स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा सन् 1961 में किया गया। इसका नामकरण सूक्ष्म शिक्षण दो वर्ष बाद वर्ष 1963 ई0 में हुआ। सूक्ष्म शिक्षण का विकास फोर्डफाउन्डेसन और कैटरिंग फाउन्डेसन से सहायता प्राप्त एक शोध प्रोजक्ट के अन्तर्गत हुआ। इस योजना का उद्‌देश्य शिक्षण कौशलो को जानना एवं इन कौशलो को मापने हेतु उपयुक्त उपकरण का विकास करना था। भारत वर्ष में सूक्ष्म शिक्षण का प्रयोग वर्ष 1970 से प्रारम्भ हुआ ।

2. सूक्ष्म शिक्षण के सोपान निम्नवत् हैं–

   (क) शिक्षण कौशल का सैद्धन्तिक विवेचन

   (ख) विशिष्ट शिक्षण कौशल की विवेचन

   (ग) आदर्श पाठ का प्रस्तुतीकरण

   (घ) पाठ का आयोजन

   (ड) शिक्षण कार्य

   (च) प्रतिपुष्टि

   (छ) पाठ का पुनः आयोजन

   (ज) पुनः शिक्षण

   (झ) पुनः प्रतिपुष्टि

3. सूक्ष्म शिक्षण के लाभ निम्नवत् है–

   (क) यह शिक्षण व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित करता है।

   (ख) यह वास्तविक शिक्षण है जो सामान्य शिक्षण की जटिलताओं को कम करता है।

   (ग) इसमें छात्राध्यापक विभिन्न कौशलो का पूर्ण अभ्यास करके उनके उपयोग की विधि से परिचित हो जाता है।

4. सूक्ष्म शिक्षण की सीमाएँ निम्नलिखित है–

   (क) सूक्ष्म शिक्षण की प्रयोगशाला सामग्री एवं व्यवस्था को सभी प्रशिक्षण विद्यालयों में उपलब्ध कराना कठिन है।

   (ख) उत्तम पर्यवेक्षको की कमी सबसे बड़ी बॉधा है।

   (ग) इसमें एक समय में एक ही कौशल सीखाया जाता है।

   (घ) वह वास्तविक कक्षा परिस्थितियों में किया जाने वाला शिक्षण नहीं है।

9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह, त्रिभुवन एवं सिहं प्रभाकर, (1983), 'शिक्षण अभ्यास के सोपान', भारत भारती प्रकाशन, जौनपुर ।
2. त्यागी गुरूसरनदास, (2012), 'वाणिज्य शिक्षण',अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
3. शर्मा, आर0 ए0, (2001), 'शिक्षण तकनीकी', आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
4. शर्मा बी0एल0 एवं मंसुरी, इम्तियाज (2017), 'वाणिज्य शिक्षण',आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।

खण्ड 04 : वाणिज्य अधिगम का एवं के लिए आंकलन

खण्ड परिचय

इस खंड के अंतर्गत हम मापन व मूल्यांकन का अर्थ, उद्देश्य, आवश्यकता व स्तर का अध्ययन करेंगे। इसके अंतर्गत ब्लूम के अनुसार शैक्षिक उद्देश्य का वर्गीकरण, वाणिज्य में शैक्षिक उद्देश्यों को मापनीय कथनों के रूप में लिखने की विधि का भी अध्ययन करेंगे। इसमें हम परीक्षण का सम्प्रत्यय, परीक्षण निर्माण की विधि, परीक्षण के प्रकार आदि का भी अध्ययन करेंगे। इस खंड में हम समस्या समाधान विधि, प्रोजेक्ट योजना विधि, निदानात्मक परीक्षण, उपचारात्मक शिक्षण का भी अध्ययन करेंगे। इस खंड के अध्ययनोपरांत आप इकाई परीक्षण व प्रश्न–पत्र निर्माण की विधि का वर्णन करने में सक्षम होंगे। इस खंड को तीन इकाईयों में विभक्त किया गया है। जिसका विवरण निम्नानुसार है–

इकाई–10 : इस इकाई मे ब्लूम के अनुसार शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण तथा वाणिज्य अधिगम में शैक्षिक उद्देश्य को मापनीय कथनों के रूप में लिखने की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसके साथ ही इस इकाई में समस्या समाधान विधि व प्रोजेक्ट विधि से आशय, शिक्षण विधि व उपयोगिता पर चर्चा की गई है।

इकाई–11 : इस इकाई मे मापन एवं मूल्यांकन से आशय, मूल्यांकन के सोपान, बुनियादी शिक्षण माडल, परीक्षण व निदानात्मक परीक्षण तथा उपचारात्मक शिक्षण के निर्माण, उनके प्रशासन की विधि, दशायें आदि पर विस्तृत चर्चा की गई है।

इकाई–12 : इस इकाई में हम इकाई परीक्षण के निर्माण की विधि का विस्तृत अध्यन करेंगे। यहाँ पर हम ब्लूप्रिंट की आवश्कता व महत्व तथा प्रश्न–पत्र निर्माण की विधि का अध्यन करेंगे।

इकाई 10 : प्रत्यय भिाक्षण के मापनीय रूप में उद्देश्यों को निर्दिट करना, सामान्यीकरण, समस्या समाधान एवं परियोंजना विधि

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 इकाई के उद्देश्य

10.3 शैक्षिक उद्देश्य से आशय

10.3.1. सामान्य उद्देश्य

10.3.2. विशिष्ट उद्देश्य

10.4 ब्लूम के अनुसार शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

10.4.1 ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्य

10.4.2 भावनात्मक क्षेत्र के उद्देश्य

10.4.3 मनोचलात्मक/क्रियात्मक क्षेत्र के उद्देश्य

10.5 मापनीय कथनों के रूप मे शैक्षिक उद्देश्यों का लेखन

10.5.1 ज्ञान स्तर के उद्देश्यों का लेखन

10.5.2 बोध स्तर के उद्देश्यों का लेखन

10.5.3 प्रयोग स्तर के उद्देश्यों का लेखन

10.6 समस्या समाधान विधि

10.6.1 समस्या समाधान के पद/चरण

10.6.2 समस्या समाधान विधि के गुण

10.6.3 समस्या समाधान विधि के दोष

10.6.4 समस्या समाधान विधि को उपयोगी बनाने के सुझाव

10.7 प्रोजेक्ट विधि

10.7.1 योजना विधि के सिद्धांत

10.7.2 प्रोजेक्ट विधि में शिक्षण के पद

10.7.3 योजना पद्धति के गुण

10.7.4 योजना पद्धति के दोष

10.8 सारांश

10.9 अभ्यास के प्रश्न

10.10 चर्चा के बिंदु

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.12 कुछ पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

शिक्षण कार्य अधिगम अनुभवों को समृद्ध बनाने के लिए छात्र एव अध्यापक के मध्य की जाने वाली बहुआयामी अंतःक्रिया है। जिसके माध्यम से छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाया जाता है। ये अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन ही शिक्षण उद्देश्य कहलाते हैं। इस तरह से शिक्षण पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किया जाने वाला सुनियोजित प्रयास है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कक्षा–शिक्षण के माध्यम से विभिन्न गतिविधियां छात्र एव शिक्षक के मध्य की जाती हैं। शिक्षक कक्षा शिक्षण को प्रभावशाली बनाने हेतु विभिन्न शिक्षण आव्यूह की रचना करता है व शिक्षण युक्तियों का प्रयोग करता है। शिक्षक प्रस्तुतीकरण के समय आधुनिक शिक्षण तकनीकी व सहायक सामग्री का उपयोग करके शिक्षण को रोचक एव प्रभावशाली बनाने का प्रयास करता है। इन सबके पीछे शिक्षक का मूलभाव होता है कि शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति सरलतापूर्वक हो तथा निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप हो। लेकिन इसके लिए शिक्षक को सबसे पहले शिक्षण उद्देश्यो को मापनीय व्यवहार परिवर्तन के रूप मे रेखांकित करना पड़ता है। इसके बाद शिक्षक निर्धारित योजना के अनुसार शिक्षण कार्य करता है। शिक्षण कार्य को सम्पन्न करने के पश्चात शिक्षक यह जानना चाहता है कि पूर्व निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है। इस हेतु वह मापन एव मूल्यांकन की सहायता लेता है। यदि छात्रों में अधिगम का स्तर शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप है तब वह शिक्षण कार्य को आगे बढ़ाता है। लेकिन जब शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप छात्रों मे अधिगम स्तर नहीं होता है तो वह पृष्ठ–पोषण के माध्यम से शिक्षण अधिगम मे आ रही कठिनाईयों का पता लगाता है। इन कठिनाईयो का पता लगाने हेतु वह जिस विधि का प्रयोग करता है उसे उपचारात्मक शिक्षण विधि कहते हैं।

10.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. वाणिज्य शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों का वर्णन कर सकेंगे।
2. वाणिज्य शिक्षण के लिए शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
3. विशिष्ट उद्देश्यों को मापनीय व्यवहार परिवर्तन के रूप में लिख सकेंगे।
4. समस्या समाधान विधि के बारे में बता सकेंगे।
5. प्रोजेक्ट विधि को समझा सकेंगे।
6. प्रोजेक्ट विधि का उपयोग शिक्षण कार्य के समय कर सकेंगे।
7. शिक्षण में शैक्षिक उद्देश्यों का महत्व बता सकेंगे।

10.3 शैक्षिक उद्देश्यों से आशय

प्रत्येक सार्थक क्रिया का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। लक्ष्यहीन क्रिया दिशाहीन होती है। उद्देश्य एक ऐसा केन्द्र बिंदु होता है, जिसकी प्राप्ति हेतु व्यक्ति सभी मार्गों व साधनों का निर्धारण करता है। उद्देश्यहीन/लक्ष्यविहीन प्रक्रिया का न कोई अर्थ होता है और न ही उसका कोई परिणाम प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक क्रिया को सार्थक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके लिए उचित उद्देश्यों का निर्धारण किया जाय। शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है जिसका प्रयोजन छात्र को उचित मार्ग पर ले जाना है। वैसे शैक्षिक प्रक्रिया जीवन पर्यंत औपचारिक एव अनौपचारिक, दोनों तरह से चलती है। किंतु यहाँ हमारा आशय शैक्षिक प्रक्रिया की औपचारिक दशाओं से है। जिसमे कक्षा शिक्षण की मुख्य भूमिका होती है। शिक्षा के उद्देश्य ही शिक्षा प्रक्रिया मे संलग्न व्यक्तियों को क्रियाशील बनाते है। उद्देश्यों के निर्धारण के अभाव में शिक्षा की कोई भी योजना न तो तैयार की जा सकती है और ना ही उसका क्रियान्वयन किया जा सकता है। वस्तुतः उद्देश्यों के ज्ञान के अभाव में शिक्षक उस नाविक के समान होता है जिसे अपने गंतव्य स्थल का ज्ञान नहीं है, जबकि छात्र उस पतवार विहीन नौका के समान है जो लहरों के थपेड़े खाती हुई आगे की ओर बढ़ती जा रही है। वास्तव में शिक्षा के उद्देश्य वे पथ–प्रदर्शक दीपक हैं जो शिक्षा प्रक्रिया में संलग्न व्यक्तियों को उचित मार्ग दिखाते हैं। वास्तव में कक्षा शिक्षण का उद्देश्य छात्रों में पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप उनमें व्यवहार परिवर्तन लाना

होता है। यदि अध्यापक शिक्षण की क्रिया द्वारा छात्रों के ज्ञान, कौशल एव विचारों में परिवर्तन न ला सके तो ऐसा शिक्षण बेकार है। अतः शिक्षक को कक्षा शिक्षण से पूर्व पाठ के लिए शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण की कला से परिचित होना चाहिए। अध्ययन की दृष्टि से शैक्षिक उद्देश्यों को हम दो भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं–

(क) सामान्य या सार्वभौमिक उद्देश्य

(ख) विशिष्ट उद्देश्य

10.3.1 सामान्य उद्देश्य

सामान्य उद्देश्य किसी देश के राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित होते हैं। इनका निर्धारण प्रायः उनके आंतरिक मूल्यों के आधार पर होता है। इनमें सार्वभौमिकता का भाव होता है। उदाहरण स्वरूप– चरित्र विकास, ज्ञानोपार्जन, सांस्कृतिक उन्नयन, आत्मनुभूति आदि सामान्य उद्देश्य हैं। सामान्य उद्देश्य बहुत विस्तृत होते हैं, इन्हें मात्र एक या दो पाठ के शिक्षण से नहीं प्राप्त किया जा सकता। जैसे– छात्रों को देशभक्त बनाना, छात्रों को अच्छा नागरिक बनाना आदि। यद्यपि ये उद्देश्य अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण है, किंतु वे शिक्षक को कक्षा शिक्षण में कोई व्यवहारिक सहायता नहीं करते।

10.3.2 विशिष्ट उद्देश्य

यह स्वाभाविक प्रश्न है कि किसी शैक्षिक कार्यक्रम के द्वारा किन उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है? इसका उत्तर है कि विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है। छात्रों की प्रगति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कक्षा शिक्षण से पूर्व पाठ के उद्देश्यों को निर्धारित करना अति आवश्यक है। इस तरह से सुनिश्चित एवं व्यावहारिक उद्देश्यों जिनकी प्राप्ति कक्षा शिक्षण के माध्यम से की जाती है, विशिष्ट उद्देश्य कहलाते हैं। इन विशिष्ट उद्देश्यों को प्रत्येक पाठ में प्राप्त करने से धीरे–धीरे छात्रों की प्रगति स्वतः सामान्य उद्देश्यों की ओर होती है। कक्षा शिक्षण से पूर्व शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण से तात्पर्य, विशिष्ट उद्देश्यों के निर्धारण से ही है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण क्यों आवश्यक है?

....
....
....

2. सामानय उद्देश्यों से क्या अभिप्राय है?

....
....
....

3. कक्षा शिक्षण के पश्चात अधिगम के स्तर की जाँच के लिए किस तरह के शैक्षिक उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है?

....
....
....

10.4 ब्लूम के अनुसार भौक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

सन् 1956 में बेंजामीन एस0 ब्लूम तथा उनके सहयोगियों ने शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। यद्यपि ब्लूम के द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण की दिशा में पहला प्रयास नहीं था, परन्तु फिर भी ब्लूम एवं उनके सहयोगियों द्वारा किया गया शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण अपनी स्पष्टता व सुगमता के कारण सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ। ब्लूम तथा उनके सहयोगियों के द्वारा तैयार शैक्षिक उद्देश्यों का यह त्रियामी वर्गीकरण शिक्षा के क्षेत्र में आज प्रमुखता से प्रयोग में लाया जाता है। ब्लूम के अनुसार छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन तीन तरह के होते हैं। व्यवहार परिवर्तन के यह तीन क्षेत्र (क) ज्ञानात्मक क्षेत्र (ख) भावनात्मक क्षेत्र तथा (ग) मनोचालक क्षेत्र हैं। छात्रो के व्यवहार में होने वाले तीन प्रकार के इन परिवर्तनों के आधार पर ही बेजामीन एस0 व्लूंम ने शिक्षण उद्देश्यों को तीन भागो में बॉटा है। जो अग्रांकित है–

1. ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्य
2. भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्य
3. मनोचालक क्षेत्र के उद्देश्य

ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोचालक क्षेत्र के उद्देश्यों का भी पुनः उपभागों में वर्गीकरण क्रमशः बी0एस0 ब्लूम, क्रथवाल एवं सिम्पसन द्वारा किया गया है। जिसे नीचे दर्शाया गया है।

मानव व्यवहार के इन तीनों पक्षों में परस्पर सम्बन्ध समन्वय व सामन्जस्य होता है। कोई भी व्यवहार एक दूसरे से पूर्णतया अलग नहीं है। इसका वर्गीकरण व्यवहार को समझाने की दिशा में एक सार्थक प्रयास मात्र है। शिक्षण की क्रिया के द्वारा बालकों के व्यवहार के इन तीनों पक्षों का परिशोधन तथा विकास करने का प्रयास किया जाता है। जो उत्तरोत्तर सरल से कठिन की ओर अग्रसर होता है जिसे नीचे दर्शाया गया है–

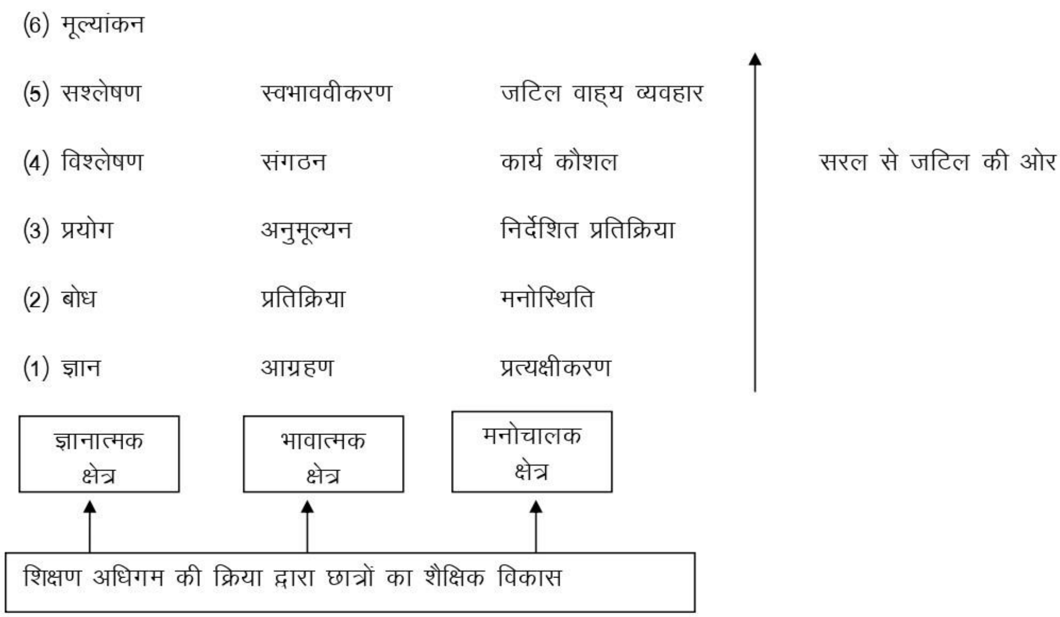

10.4.1 ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्य (Objectives of cognitive domain)

ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों के अंतर्गत वे उद्देश्य आते हैं जो छात्रों की बौद्धिक योग्यतों, क्षमताओ, कौशलों आदि के विकास से सम्बन्धित होते हैं। ब्लूम महोदय के अनुसार ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों द्वारा विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान, विशिष्ट तथ्यों को प्राप्त करने के ढंगो का ज्ञान, मान्यताओ एव परम्पराओं का ज्ञान, प्रक्रियाओं एंव घटनाओं की गतिविधियों का ज्ञान, विधियो एव प्रतिविधियों का ज्ञान, किसी विषय के अंतर्गत पाए जाने वाले वर्गीकरण तथा श्रेणियों का ज्ञान तथा सिद्धांत एवं सामान्यीकरण के ज्ञान का बोध होता है। बेंजामिन एस० ब्लूम ने अपनी पुस्तक ज्ञानात्मक शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण'' में ज्ञानात्मक उद्देश्यों द्वारा छात्र के ज्ञानात्मक पक्ष को विकसित करने हेतु छः स्तरों का वर्णन किया है। ज्ञान के ये स्तर क्रमशः कठिन होते जाते हैं। जो निम्नवत है–

(1) ज्ञान (Knowledge)

(2) बोध (Comprihensive)

(3) प्रयोग (Application)

(4) विश्लेषण (Analysis)

(5) संश्लेषण (Synthesis)

(6) मूल्यांकन (Evaluation)

1. ज्ञान–

इस उद्देश्य की मुख्य विशेषता पुनः स्मरण है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि ज्ञान उद्देश्य सीखने वाले व्यक्ति की उन क्रियाओं का वर्णन करता है जो मुख्य रूप से स्मृति से सम्बन्धित होती हैं। अतः ज्ञान उद्देश्यों के अंतर्गत विभिन्न पदों, प्रत्ययों, सूत्रों, सिद्धांतों, विधियों आदि का पुनः स्मरण तथा पहचान से सम्बन्धित व्यवहार आते हैं।

2. बोध–

ज्ञान के पश्चात बोध उद्देश्यों का क्रम आता है। इस स्तर पर छात्र विभिन्न सूचनाओं के ज्ञान के साथ–साथ सूचनाओं से सम्बन्धित समझ भी रखता है। इसमें विभिन्न तथ्यों की व्याख्या भी सम्मिलित है।

3. अनुप्रयोग–

अनुप्रयोग उद्देश्य स्तर पर छात्र विभिन्न परिस्थितियों में अपने सीखे गये ज्ञान का उपयोग करते हैं।

4. विश्लेषण–

विश्लेषण उद्देश्य के अंतर्गत वे व्यवहार आते हैं जो प्राप्त सूचना को उसके विभिन्न भागों में करने से सम्बन्धित होते हैं। किसी सूचना को उसके भागों में विभक्त करने का उद्देश्य सूचना में सम्मिलित विभिन्न विचारों को क्रमबद्ध करना होता है।

5. संश्लेषण–

संश्लेषण उद्देश्य में छात्र विषय के विभिन्न भागों, अंशों तथा तत्वों के साथ कार्य करके उन्हें इस तरह से व्यवस्थित करते हैं कि कोई ऐसी रचना तैयार हो सके जो पहले उनके सम्मुख प्रस्तुत नहीं थी। इसमें कोई नवीन योजना तैयार करना, सम्बन्ध देखना, नवीन अभिव्यक्ति प्रस्तुत करना आदि आते हैं।

6. मूल्यांकन–

मूल्यांकन उद्देश्य, ज्ञानात्मक क्षेत्र का सबसे उच्च स्तर है। यहाँ पर यह समझना आवश्यक है कि किसी उद्देश्यों कि पूर्ति के लिए आवश्यक सामग्री तथा विधियों के मूल्य के निर्धारण से सम्बन्धित निर्णय लेना मूल्यांकन उद्देश्य के अंतर्गत आता है।

10.4.2 भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्य (Objectives of affective domain)

भावात्मक क्षेत्र से सम्बन्धित उद्देश्यों का वर्गीकरण सन् 1964 ई० में क्रथवाल एंव उनके सहयोगियों ने प्रस्तुत किया। क्रथवाल एवं उनके सहयोगियों ने अपनी पुस्तक "Taxonomy of educational objectives- handbook II affective domain (1964)" मे लिखा है कि भावात्मक क्षेत्र में वे उद्देश्य सम्मिलित है जिनका सम्बन्ध रूचियों, अभिवृत्तियों, तथा मूल्यों में परिवर्तन से है। क्रथवाल तथा उनके सहयोगियों के अनुसार भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों का वर्गीकरण पाँच भागों में किया जा सकता है।

भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों के ये वर्गीकरण इस प्रकार है–

1. ग्रहण (Receiving)
2. प्रतिक्रिया (Responding)
3. मूल्यांकन (Valuing)
4. संगठन (Organising)
5. स्वाभावीकारण (Characterization)

1. ग्रहण (Receiving)

भावात्मक वर्गीकरण का यह स्तर विभिन्न उद्दीपनो की उपस्थिति के प्रति छात्र की संवेदनशीलता तथा उस उद्दीपन को ग्रहण करने की चाह से सम्बन्धित है।

2. प्रतिक्रिया (Responding)

भावात्मक वर्गीकरण के इस स्तर का सम्बन्ध उन अनुक्रियाओं से है जो किसी उद्दीपन को ग्रहण करने के पश्चात छात्र करता है।

3. मूल्यांकन (Valuing)

भावात्मक वर्गीकरण के इस स्तर का सम्बन्ध विभिन्न वस्तुओं, कार्यों या व्यवहारों के उपयोग के मूल्य को स्वीकार करने तथा उसके प्रति एक निश्चित धारणा बनाने से है।

4. संगठन (Organization)

मूल्यों का आत्मीयकरण करने के उपरांत छात्रों के सम्मुख ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जिनमें एक से

अधिक मूल्य होते हैं। ऐसी परिस्थिति में छात्र को उन मूल्यों को एक क्रम में व्यवस्थित करना होता है। जब मूल्यों का एक क्रम बन जाता है तब इन मूल्यों को वह क्रमशः आत्मसात करता हैं।

5. स्वभावीकरण (Characterization)

भावात्मक उददेश्यों के वर्गीकरण के उच्च स्तर पर स्वभाव निर्माण आता है। इस स्तर पर छात्र स्वीकार किए गये मूल्यों के अनुरूप कार्य करता है। इन मूल्यों का उसके उपर प्रभाव इतना स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के स्वाभाव को इन मूल्यों से जोड़ा जा सकता है। अतः इस स्तर पर मूल्य चरित्र के स्थाई अंग बन जाते हैं।

10.4.3 मनोचालक क्षेत्र के उद्देश्यों का वर्गीकरण

मनोचालक क्षेत्र का सम्बन्ध मांसपेशियों के विकास, प्रयोग एव शारीरिक क्रियाओं के समन्वय की योग्यता से है। शारीरिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, लेखन क्रिया, नाट्यकला आदि मे मांसपेशिय गतियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसलिए इनकी शिक्षा में मनोचालक पक्ष के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। मनोचालक क्षेत्र से सम्बन्धित शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण सिम्पसन ने 1966 ई० में किया था। सिम्पसन ने अपनी पुस्तक ''The classification of educational objective psychomotor domain'' (1966) में लिखा है कि ''मनोचालक क्षेत्र में उन उद्देश्यों को सम्मिलित किया जाता है। जो शारीरिक तथा गामक कौशल से प्रभावित होते हैं।''

सिम्पसन द्वारा किए गये वर्गीकरण के अनुसार मनोचलक क्षेत्र के उद्देश्यों को पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है। जो क्रमशः इस प्रकार है–

(1) प्रत्यक्षीकरण (Perception)

(2) मनोस्थिति (Set)

(3) निर्देशित प्रतिक्रिया (Guided response)

(4) कार्य कौशल (Mechanism)

(5) जटिल व्यवहार (Complex overt behavior)

1. प्रत्यक्षीकरण (Perception)

मनोचालक क्रिया को करने के लिए वस्तुओं का प्रत्याक्षीकरण करना अत्यंत आवश्यक है। इस वर्ग का सम्बन्ध इन्द्रियों की सहायता से वस्तुओं व गुण तथा सम्बन्धों के प्रति जागरूक होने की प्रक्रिया है।

2. मनोस्थिति (set)

मनोस्थिति किसी विशेष प्रकार के कार्य को करने के पूर्व का समायोजन है।

3. निर्देशित प्रतिक्रिया (Guided response)

किसी कौशल को विकसित करने का यह पूर्व पद है। इसमें उन शारीरिक योग्यताओ पर ध्यान दिया जाता है, जो किसी जटिल कौशल को करने के लिए आवश्यक होती है।

4. कार्य कौशल (Mechanism)

इस स्तर पर छात्र किसी कार्य को करने के लिए आवश्यक आत्मविश्वास तथा कौशल प्राप्त करने का प्रयास करता है।

5. जटिल व्यवहार (Complex overt behavior)

इस स्तर पर छात्र ऐसे कार्य कर सकता है जिन्हें अत्यधिक जटिल माना जाता है। इस स्तर को प्राप्त करने के उपरांत छात्र जटिल से जटिल कार्य को सरलतापूर्वक कर लेता है अर्थात इन कार्यों को कम समय तथा शक्ति व्यय करके कर लेता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. बेंजामिन एस ब्लूम के द्वारा शैक्षिक उददेश्यों के वर्गीकरण के क्षेत्र कौन कौन है?

....
....
....

5. ब्लूम द्वारा ज्ञानात्मक क्षेत्र के वर्गीकरण के विभिन्न स्तरों के नाम बताइए।

....
....
....

6. भावात्मक क्षेत्र का वर्गीकरण किसके द्वारा और कब किया गया?

....
....
....

10.5 मापनीय कथनों के रूप में शैक्षिक उद्देश्यों का लेखन

शिक्षण अधिगम के फलस्वरूप छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन होता है। शिक्षण के फलस्वरूप छात्रों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन की माप विभिन्न मापन विधियों द्वारा की जाती है। शिक्षण के फलस्वरूप छात्रों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों की जाँच के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षण से पूर्व छात्रों के अंदर होने वाले परिवर्तन की दिशा का ज्ञान स्पष्ट रूप से उल्लेख मापने योग्य कथन के रूप में किया जाए। जिसके आधार पर छात्रों के सीखने के स्तर की जाँच की जा सके। स्पष्ट शैक्षिक उददेश्यों के अभाव में शिक्षण के फलस्वरूप व्यवहार परिवर्तन का मापन नहीं किया जा सकता। परिणामस्वरूप शिक्षण कार्य की सफलता व कमियों का सही–सही पता नहीं लगाया जा सकता है। अतः मापन व मूल्यांकन में स्पष्टता के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षण उद्देश्यों को व्यवहार परिवर्तन के मापनीय कथनों के रूप में स्पष्ट रूप से लिखा जाए जिसकी जाँच असंदिग्ध रूप से कक्षा शिक्षण के उपरांत अध्यापक कर सके तथा छात्र की प्रगति का पता लगा सके। इससे अध्यापकों को अगले पाठ के शिक्षण से पूर्व आवश्यक तैयारी में मदद मिलती है। छात्रों के व्यवहार परिवर्तन के सन्दर्भ में शैक्षिक उद्देश्य लेखन का उदाहरण निम्नवत है–

(क) छात्रों को चाय की फसल के बारे में ज्ञान प्रदान करना।

(ख) छात्र चाय की फसल के बारे में बता सकेंगे।

(ग) छात्र संज्ञा के विषय में जान जाएँगे।

(घ) छात्र संज्ञा के बारे मे वर्णन कर सकेंगे।

उपरोक्त उदाहरण में क्रम संख्या –(क) मे 'यह स्पष्ट नहीं है कि शिक्षण के बाद छात्र क्या करने में सक्षम होंगे अथवा उनके व्यवहार में क्या परिवर्तन होगा। जबकि क्रमांक –(ख) में अधिगम परिणाम स्पष्ट है। इसी तरह क्रमांक (ग) मे जान जाएँगे क्रिया का प्रयोग किया जाता है जो कि ऐसा व्यवहार है जिसका मापन नहीं हो सकता है जबकि क्रमांक (घ) मे 'वर्णन कर सकेंगे' क्रिया का प्रयोग किया गया है जिसको प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। अतः उदाहरण मे क्रमांक 'क' और 'ग' की तुलना में क्रमांक 'ख' और 'घ' के कथन स्पष्ट हैं। जिनसे छात्र व्यवहार की दिशा व परिवर्तन के स्थिति की असंदिग्ध रूप से जानकारी मिलती है।

जिसका मापन करना आसान है।

यहाँ पर यह समझना आवश्यक है कि शिक्षण उद्देश्यों के लेखन में स्पष्टता अत्यंत आवश्यक है। शैक्षिक उद्देश्यों का लेखन करते समय उन परिस्थितियों का उल्लेख अवश्य करना चाहिए जिनसे छात्र व्यवहार (अधिगम स्तर) की पहचान हो सके। परिस्थितियों का स्पष्ट उल्लेख करने से छात्रों के व्यवहार का मापन एव मूल्यांकन सरल हो जाता है। मूल्यांकन में सरलता एवं यथार्थता के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षण उद्देश्यों को व्यवहार परिवर्तन के रूप में स्पष्ट किया जाए, जिससे उनकी प्राप्ति की सीमा का असंदिग्ध रूप से पता चल सके। जब शिक्षण उद्देश्यों को व्यवहार परिवर्तन के रूप में लिखा जाता है तो उसे व्यावहारिक उद्देश्य अथवा विशिष्ट उद्देश्य कहा जाता है। ये उद्देश्य व्यावहारिक क्रियाओं (Action verb) की सहायता से लिखे जाते हैं। ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोचालक क्षेत्र के उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त की जाने वाली व्यवहारिक क्रियाओं की विस्तृत सूची नीचे दी गयी है।

1. ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्या के लिए व्यवहारिक क्रियाएँ–

ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यो के लिए व्यवहारिक क्रियाऍ नीचे दर्शायी गयी हैं–

क्रमांक	उद्देश्य	कार्य सूचक क्रियाएँ
1.	**ज्ञान**	परिभाषा देना, चयन करना, मापन करना, मिलान करना, प्रत्यास्मरण करना, सूची बनाना, वर्णन करना, पहचानना, लिखना आदि।
2	**बोध**	व्याख्या करना, उदाहरण देना, संकेत करना, प्रस्तुत करना, वर्गीकरण करना, निर्णय लेना, चयन करना आदि।
3	**प्रयोग**	पूर्व कथन करना, जाँच करना, गणना करना, प्रदर्शन करना, रचना करना, प्रयोग करना, उल्लेख करना आदि।
4	**विश्लेषण**	विश्लेषण करना, विभाजन करना, निष्कर्ष करना, तुलना करना, भेद करना, अलग करना, आलोचना करना आदि।
5	**संश्लेषण**	तर्क करना, चयन करना, वाद– विवाद करना, निष्कर्ष निकालना, व्यवस्थित करना, पूर्वकथन करना, सामान्यीकरण करना, संक्षिप्त करना आदि।
6	**मूल्यांकन**	निर्णय लेना, पहचानना, मूल्यांकन करना, आलोचना करना आदि।

2. भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों के लिए व्यवहारिक क्रियाएँ–

भावात्मक क्षेत्र के उददेश्यों के लिए व्यवहारिक क्रियाएँ नीचे दर्शायी गयी हैं–

क्रमांक	**उद्देश्य**	**कार्य सूचक क्रियाएँ**
1	**ग्रहण करना**	चयन करना, वर्णन करना, प्रयोग करना, स्वीकार करना, ग्रहण करना, प्रत्याक्षीकरण करना आदि।
2	**प्रतिक्रिया करना**	वाद–विवाद करना, चयन करना, सहायता करना, उत्तर देना, लिखना, पढ़ना, आलेखन करना आदि।
3	**मूल्यांकन**	पूर्ण करना
4	**संगठन**	व्यवस्था करना, चयन करना, सम्बन्ध स्थापित करना, तुलना करना, निश्चित करना, आदि।

5	**स्वाभावीकरण**	अंतर करना, प्रभाव डालना, पहचानना, सुधार करना, विकसित करना, कार्य करना आदि।

3. **मनोचालक क्षेत्र के उद्देश्यों के लिए व्यवहारिक क्रियाए**–

मनोचालक क्षेत्र के उद्देश्यों के लिए व्यवहारिक क्रियाएँ नीचे दर्शायी गयी हैं–

क्रमांक	उद्देश्य	कार्य सूचक क्रियाएँ
01	**प्रत्यक्षीकरण**	चुनता है, वर्णन करता है, पता लगाता है, अंतर करता है, अलग करता है, सम्बन्धित करता है, पहचानता है, चयन करता है आदि।
02	**मनोस्थिति**	प्रारंभ, प्रदर्शित, व्याख्या करना, प्रतिक्रिया आदि।
03	**निर्देशित प्रतिक्रिया**	अनुसरण, प्रतिक्रिया, पूनरूत्पादन, निशान आदि।
04	**कार्य कौशल**	स्वभाविक रूप से करेगा, आविष्कार /खोज के लिए, अनुकूलित, निर्माण, संयोजन, रचना, संशोधित आदि।
05	**जटिल बाहय व्यवहार**	चपलता, सहनशक्ति, व्यवस्था, रचना आदि।

4. **क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय मैसूर के द्वारा प्रस्तुत ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों का वर्गीकरण**–

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय मैसूर ने ब्लूम के द्वारा बताये गये छः उद्देश्यों को चार में ही परिवर्तित करने का सुझाव दिया है। उन्होंने इन चार उद्देश्यों को मानसिक क्रियाओं के रूप में व्याख्या करते हुए 17 मानसिक योग्यता में विभाजित किया है। इस प्रकार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय मैसूर की प्रणाली मे छात्रों के व्यवहार को केवल 17 मानसिक क्रियाओं के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जो निम्नलिखित है–

क्रमांक	उद्देश्य	कार्य सूचक क्रियाएँ
1	**ज्ञान**	1.1 प्रत्यास्मरण करना
		1.2 पहचान
2	**बोध**	2.1 सम्बन्ध देखना
		2.2 उदाहरण देना
		2.3 भेद करना
		2.4 वर्गीकरण करना
		2.5 व्याख्या करना
		2.6 पुष्टि करना
		2.7 सामान्यीकरण करना
3	**अनुप्रयोग**	3.1 तर्क करना
		3.2 परिकल्पना करना
		3.3 परिकल्पना की स्थापना करना
		3.4 निष्कर्ष ज्ञात करना
		3.5 अनुमान लगाना
4	**सृजनशीलता**	4.1 विश्लेषण करना

4.2 संश्लेषण करना

4.3 मूल्यांकन करना

5. उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप में लिखते समय ध्यान रखने योग्य बातें–

(1) उद्देश्य कथन में केवल एक क्रिया होनी चाहिए।

(2) उद्देश्य कथन मापन योग्य व्यवहार के रूप में होना चाहिए।

(3) उद्देश्य कथन सार्थक होना चाहिए।

(4) प्रत्येक उद्देश्य में केवल एक व्यवहार का ही उल्लेख होना चाहिए।

(5) उद्देश्य कथन यथासंभव छात्रों के समूह के लिए न लिखकर छात्र के लिए लिखना चाहिए।

(6) उद्देश्य लेखन में इस बात का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि छात्र के व्यवहार में कौन सा परिवर्तन अपेक्षित है।

(7) यह नियत होना चाहिए कि शिक्षण के बाद छात्र के व्यवहार में किस तरह का परिवर्तन होगा। यह परिवर्तन ऐसा होना चाहिए जिसका मापन व निरीक्षण हो सके।

(8) शैक्षिक परिस्थितियाँ जिसमें उपरोक्त व्यवहार अपेक्षित होंगे, स्पष्ट होना चाहिए।

(9) अपेक्षित व्यवहार की निम्नतम सीमा क्या होगी, इस बात को भी स्पष्ट रूप से लिखना चाहिए।

6. व्यवहारिक/विशिष्ट उद्देश्यों के लेखन के कुछ सरल उदाहरण

(1) छात्र बेरोजगारी के कारण बता सकेंगे।

(2) छात्र कर (Tax) के नियम को समझा सकेंगे।

(3) छात्र दिए गये अंग्रेजी वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद कर लेंगे।

(4) छात्र शैक्षिक भ्रमण की योजना बना लेंगे।

(5) छात्र पाठ्य सहगामी क्रियाओं की सूची बना सकेगा।

(6) छात्र पूछने पर वाणिज्य की परिभाषा बताएगा।

(7) छात्र एशिया महादीप के देशों के नाम मानचित्र में दर्शा सकेगा।

(8) छात्र भारत का मानचित्र दिए जाने पर उसके प्रमुख व्यापारिक स्थलों को दर्शा सकेगा।

(9) छात्र लक्ष्य एवं उद्देश्यों में अंतर बता सकेगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

7. बी०एस० ब्लूम द्वारा किए गये वर्गीकरण के आधार पर ज्ञान स्तर के उद्देश्यों की व्यवहारिक क्रियाएँ बताएँ।

....

....

....

8. बी०एस० ब्लूम द्वारा किए गये वर्गीकरण के आधार पर बोध स्तर के उद्देश्यों की व्यवहारिक क्रियाएँ बताए ।

....
....
....

9. क्रथवाल द्वारा भावात्मक क्षेत्र के लिए किए गये वर्गीकरण के अनुसार मूल्यांकन उद्देश्यों के लिए व्यवहारिक क्रियाएँ बताए ।

....
....
....

10.6 समस्या समाधान विधि

समस्या समाधान विधि उच्च स्तरीय कक्षाओं में शिक्षण की एक प्रचलित विधि है। यह विधि तर्क की प्रक्रिया पर आधारित है। समस्या समाधान विधि के विकासकर्ताओं में हरबॉर्ट, टालमैन आदि का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। यह विधि पूर्णतया नवीन विधि नहीं है। महान दार्शनिक सुकरात अपनी शिक्षाओं के प्रचार–प्रसार हेतु इस विधि का प्रयोग करता था। समस्या समाधान की विधि को हम जेम्स एम०ली० के शब्दों में इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं– ''समस्या समाधान एक शैक्षिक प्रणाली है, जिसके द्वारा शिक्षक तथा छात्र किसी महत्वपूर्ण शैक्षिक कठिनाइयों के समाधान के लिए सचेत होकर पूर्ण संलग्नता के साथ प्रयास करते हैं। समस्या पद्धति छात्रों को स्वयं सीखने के लिए तत्पर बनाती है। ऐसा वे अपनी शक्तियों का प्रयोग करके करते हैं।'' इस विधि में छात्र के सम्मुख समस्या प्रस्तुत कर दी जाती है। छात्र इस समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है। छात्र को व्यक्तिगत रूप से सोचने तथा कार्य करने की स्वतंत्रता दी जाती है। छात्र समस्या समाधान के लिए अनेक युक्तिओं का प्रयोग करता है। समस्या के समाधान हेतु वह अपने अध्यापक, सहपाठीर्यो, पुस्तकालय व उपलब्ध साक्ष्यों का सहारा लेता है। इस क्रिया में शिक्षक छात्र के प्रश्नों का उत्तर देता है। उसे आवश्यक स्त्रोतों तथा साधनों से परिचित कराता है। शिक्षक छात्र को समय समय पर प्रोत्साहित भी करता रहता है।

10.6.1 समस्या समाधान के पद / चरण

जेम्स एम०ली० के अनुसार समस्या समाधान के पद / चरण निम्नवत है–

1 समस्या का चयन

इस चरण में शिक्षक तथा छात्र मिलकर समस्या का चयन करते हैं। समस्या का चयन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) समस्या वास्तविक हो।

(2) शैक्षिक दृष्टिकोण से समस्या महत्वपूर्ण होनी चाहिए।

(3) समस्या समाधान के योग्य हो।

(4) समस्या पाठ्यचर्या या इकाई से सम्बन्धित हो।

2 समस्या का पारिभाषीकरण व विश्लेषण

समस्या के चयनोपरांत अध्यापक छात्र को समस्या के कारणों की पहचान हेतु प्रेरित करता है। छात्र यह जानना चाहता है कि यह समस्या क्यों है? यदि इस प्रश्न का उत्तर एक ही है तो यह शोध की समस्या नहीं है। समाधान होने के लिए विकल्पों का होना आवश्यक है।

3 आंकड़ों का संग्रहण

इस चरण में समस्या के समाधान के लिए सम्बन्धित आंकड़ों का संग्रहण किया जाता है। इन आंकड़ों

के आधार पर ही समस्या का विश्लेषण होता है।

4 समस्या का परीक्षण

इस चरण में उपलब्ध प्रमाण के आधार पर समस्या का परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण के आधार पर समस्या के समाधान का उपाय मिल जाता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि यह समाधान परीक्षित तथ्यों एवं सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। साथ ही समाधान निश्चित एवं स्पष्ट हो।

5 समाधान का प्रयोग

छात्रों को कक्षा में तथा व्यक्तिगत रूप से इस समाधान का प्रयोग अपने जीवन में करना चाहिए।

10.6.2 समस्या समाधान विधि के गुण

समस्या समाधान विधि के निम्नलिखित गुण है–

(1) यह जीवन के अनुरूप है।

(2) यह मानसिक कुशलता, धारणाओं, वृतियों, आदि के विकास में सहायक है।

(3) यह छात्रों को समस्या के समाधान के लिए प्रेरित करती है।

(4) यह छात्रों में रटने की प्रवृति को बढ़ावा देने के बजाय उनकी चिंतन शक्ति को प्रखर बनाती है।

(5) यह छात्रों को क्रियाशील बनती है।

(6) इस विधि द्वारा छात्र तथ्यों का संग्रहण, विश्लेषण व प्रयोग करना सीख जाता है।

(7) छात्र स्वाध्याय मे रूचि लेता है।

(8) इस विधि द्वारा छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया जाता है।

(9) इस विधि द्वारा छात्रों में निराकरण, विश्लेषण जैसे गुणों का विकास होता है।

(10) इस विधि द्वारा छात्रों का समाजीकरण होता है।

(11) यह विधि लोकतांत्रिक है।

10.6.3 समस्या समाधान विधि के दोष

समस्या समाधान विधि के अनेक गुणों के बावजूद इसके अनेक दोष भी हैं जो निम्नलिखित है–

(1) यह विधि छोटी कक्षाओं के लिए उपयोगी नहीं है।

(2) इस विधि द्वारा सीखने में अधिक समय लगता है। जिससे समय का अपव्यय होता है।

(3) सभी शिक्षक इस विधि का प्रयोग सफलतापूर्वक नहीं कर सकते क्योंकि इस विधि में अनुशासन की समस्या उत्पन हो जाती है।

(4) इस विधि का प्रयोग समूह के लिए करना अत्यंत दुष्कर है।

(5) इस विधि द्वारा शिक्षण हेतु प्रत्येक छात्र को अलग–अलग समस्या का चयन करना होगा।

(6) इस विधि में पाठ्यवस्तु का स्वरूप प्रायः निश्चित नहीं होता है।

(7) यह विधि आर्थिक दृष्टि से खर्चीली है।

(8) समस्या समाधान विधि में जोखिम अधिक होता है। क्योंकि इसमें अनेक प्रयास विफल हो जाते हैं। गलत समाधान को स्वीकार करने की संभावना भी रहती है।

10.6.4 समस्या समाधान विधि को उपयोगी बनाने के सुझाव

समस्या समाधान विधि को निम्न सुझावों के साथ उपयोगी बनाया जा सकता है–

(1) समस्या का चयन छात्र की योग्यता व क्षमता को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

(2) समस्या सरल व सुगम होनी चाहिए।

(3) एक समय में एक ही समस्या को लेना चाहिए।

(4) समस्या वास्तविक होनी चाहिए।

(5) समस्या जीवन से सम्बन्धित होनी चाहिए।

(6) समस्या को स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिए।

(7) समस्या अत्यंत खर्चीली नहीं होनी चाहिए।

(8) समस्या के समाधान हेतु छात्र को पर्याप्त रूप से प्रोत्साहित करना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

10. समस्या समाधान विधि के शिक्षण के कौन–कौन से चरण हैं?

....
....
....

11. समस्या समाधान विधि के कोई दो गुण बताए ।

....
....
....

10.7 प्रोजेक्ट विधि

योजना विधि का शिक्षण में विशेष स्थान है। यह विधि शिक्षण की नवीनतम विधियों में से एक मानी जाती है। इस विधि का विकास शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोजनवाद के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप हुआ है। इस विधि की आधारभूत मान्यता है कि शिक्षा इस प्रकार दी जानी चाहिए कि वह जीवन को समर्थ बना सके। योजना विधि को विकसित करने का श्रेय प्रसिद्ध अमेरिकन शिक्षा शास्त्री जान डी० वी० के शिष्य डब्ल्यू० एच० किलपैट्रिक को जाता है। यह विधि अनुभव केंद्रित है। प्रोजेक्ट विधि मे बालकों के सामाजीकरण पर विशेष बल दिया जाता है। इस विधि का उपयोग सामाजिक विषय के शिक्षण में उत्तम तरीके से किया जा सकता है। किलपैट्रिक ने योजना पद्धति की परिभाषा इस प्रकार दी है– ''योजना सामाजिक वातावरण मे पूर्ण संलग्नता से किया जाने वाला उद्देश्य पूर्ण कार्य है।

10.7.1 योजना विधि के सिद्धांत

(1) उद्देश्य का सिद्धांतः –

योजना पद्धति मे बालक को उद्देश्य का ज्ञान कराया जाता है। उद्देश्य निश्चित होने पर बालक रूचि, उत्साह, लगन एवं मेहनत से कार्य करता है।

(2) क्रियाशीलता का सिद्धांतः–

क्रियाशीलता के सिद्धांत के अनुसार किसी कार्य को करके सीखने को महत्व दिया जाता है। इसमें कार्य की व्यवस्था छात्र की आयु एवं मानसिक स्तर के अनुरूप होती है।

(3) वास्तविकता का सिद्धांतः–

योजना पद्धति में जो भी कार्य दिया जाता है वह जीवन से सम्बन्धित एवं वास्तविक होता है। विद्यालय का वातावरण लोकतांत्रिक होता है। इस विधि में कृत्रिमता का कोई स्थान नहीं होता है।

(4) उपयोगिता का सिद्धांतः–

योजना पद्धति में जो भी कार्य छात्र को दिया जाता है वह उपयोगी होता है। अतः छात्र प्रोजेक्ट को रूचि, प्रेम तथा मेहनत से पूरा करता है।

(5) स्वतंत्रता का सिद्धांतः–

इस सिद्धांत के अनुसार प्रोजेक्ट का चुनाव कर लेने के पश्चात छात्र को उस कार्य को पूर्ण करने हेतु पर्याप्त स्वतंत्रता दी जाती है। उस पर समय व विधि को लेकर कोई अतिरिक्त दवाब नहीं बनाया जाता।

(6) मितव्ययिता का सिद्धांतः–

मितव्ययिता से आशय धन, समय, व शक्ति के समुचित उपयोग से है। योजना विधि में यह ध्यान रखा जाता है कि कम से कम धन, समय, श्रम व शक्ति के उपयोग से कार्य सम्पन्न हो।

(7) सामाजिकता का सिद्धांतः–

इस सिद्धांत के अनुसार सामाजिक कार्यक्रमों व सामाजिक समूहों के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। इसमें छात्र समाज के लोगों अथवा समूह के साथ समय व्यतीत करते हुए सामाजिक गुणों को सीखता है।

(8) अनुभव का सिद्धांतः–

प्रोजेक्ट विधि में अनुभव के समृद्धि पर बल दिया जाता है। समाज व विद्यालय के संयोजन व सहयोग से छात्र अनेक प्रकार के अनुभव ग्रहण करता है। इससे उसमें सामाजिक गुणों का विकास होता है।

(9) समन्वय का सिद्धांतः–

इस सिद्धांत के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार के विषय को अलग अलग सीखने के स्थान पर उनको प्रोजेक्ट के माध्यम से समन्वय करके सीखना ज्यादा उपयोगी होता है।

10.7.2 प्रोजेक्ट विधि में शिक्षण के पद

इस विधि में शिक्षण के निम्न पदों का अनुसरण किया जाता है–

(1) परिस्थिति उत्पन्न करनाः–

प्रथम चरण में छात्र के साथ बातचीत करके उन्हें कार्य के उद्देश्य को समझाया जाता है तथा उनमें कार्य के प्रति रूचि उत्पन्न की जाती है। इससे छात्र स्वयं ही समस्या का समाधान खोजने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

(2) योजना का चुनावः–

इस चरण मे छात्र पाठ्यक्रम से सम्बन्धित विषय पर आधारित योजना का चयन करता है। इस हेतु वह अपने सहयोगियों तथा अध्यापकों से विचार–विमर्श करता है।

(3) कार्यक्रम बनानाः–

प्रोजेक्ट के चुनाव के बाद छात्र कार्य को सम्पन करने हेतु अपने अध्यापाकों के मार्गदर्शन में कार्यक्रम बनाते हैं। छात्र को यह सुविधा दी जाती है की वह अपनी योग्यता, रूचि व सामर्थ्य के अनुसार कार्यक्रम का चुनाव करे।

(4) प्रोजेक्ट को पूर्ण करनाः–

कार्यक्रम निश्चित हो जाने के बाद छात्र स्वतः कार्य करके योजना को पूर्ण करते हैं। इस प्रक्रिया में अध्यापक गलतियों का संशोधन करता है तथा आवश्यक दिशा निर्देश देता है।

(5) योजना का मूल्यांकनः

प्रोजेक्ट पूर्ण हो जाने के बाद शिक्षक और छात्र यह जानने का प्रयास करते हैं कि जिस उद्देश्य से उन्होंने यह कार्य किया था उसकी प्राप्ति हुई या नहीं। सभी छात्र अपने–अपने कार्य के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हैं। शिक्षक उनके कार्य का निरीक्षण और मूल्यांकन करते हैं।

(6) योजना का आलेखनः–

प्रोजेक्ट का मूल्यांकन हो जाने के उपरांत छात्र अपनी प्रोजेक्ट पुस्तिका में उसका पूर्ण विवरण लिखते हैं। वे पाँचो पदों और अपने द्वारा किए गये कार्य विधि को सविस्तार लिखते हैं। शिक्षक छात्रों के अभिलेखों को पढ़कर उनके कार्य और प्रगति के सम्बन्ध में अपनी राय देता है।

10.7.3 योजना पद्धति के गुण

अन्य पद्धतियों के समान इसके भी अनेक गुण हैं जो निम्न हैं–

(1) इस विधि में छात्रों के जीवन से सम्बन्धित वास्तविक समस्या को प्रोजेक्ट के रूप में रखा जाता है।

(2) यह पद्धति बाल केंद्रित होने के कारण छात्रों के लिए अति उपयोगी है।

(3) यह विधि छात्रों में नेतृत्व, सहयोग, सहानुभूति एवं उदारता जैसे गुणों का विकास करती है।

(4) यह पद्धति छात्रों में तर्क, विचार और वाद– विवाद जैसे मानसिक कार्य को बढ़ावा देती है।

(5) यह पद्धति समाज और विद्यायलय के बीच समन्वय स्थापित करते हुए उनकी वास्तविक समस्यायों का हल खोजने का प्रयास करती है।

(6) यह पद्धति छात्र को स्वयं करके सीखने का अवसर देती है।

(7) यह पद्धति व्यक्तिगत विभिन्नताओं को स्वीकार करती है। प्रोजेक्ट में सम्मिलित प्रत्येक छात्र अपनी क्षमतानुसार कार्य करता व सीखता है।

(8) यह पद्धति छात्र मे सामाजिकता के गुणों का विकास करती है।

(9) यह पद्धति छात्र को कृत्रिम ज्ञान के बजाय वास्तविक ज्ञान देती है। क्योंकि वह जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को वास्तविक परिस्थितियों में प्रोजेक्ट के माध्यम से हल करता और सीखता है।

(10) यह पद्धति मनोवैज्ञानिक है। इसमें छात्रों को उनकी रूचि के अनुसार सीखने का अवसर मिलता है। इसके साथ ही उसकी ज्ञानेन्द्रियों का भी प्रशिक्षण होता है।

(11) इस विधि द्वारा ज्ञान सहसम्बन्ध के माध्यम से प्राप्त होता है जो सीखने के इस सिद्धांत का समर्थन करती है कि ''हम एक समय में कभी भी एक बात नही सीखते है''।

10.7.4 योजना पद्धति के दोष

यद्यपि इस पद्धति के अनेक गुण है बावजूद इसके इस पद्धति के अनेक दोष भी है जो निम्न है–

(1) यह पद्धति छात्र को किसी विषय का क्रमबद्ध ज्ञान नही देती है क्योंकि वह विभिन्न विषयों के विभिन्न अंगो का अध्यापन अपनी रूचि के अनुसार करता है।

(2) यह विधि समय, श्रम व आर्थिक दृष्टि से खर्चीली है।

(3) इस विधि द्वारा पाठ्यक्रम के सभी विषयो का शिक्षण संभव नहीं है।

(4) इस विधि द्वारा सतही ज्ञान प्रदान किया जाता है, क्योंकि इस विधि द्वारा गूढ़ व अमूर्त विषयों का शिक्षण संभव नहीं है।

(5) इस विधि से शिक्षण में अनुशासन की समस्या आती है।

(6) यह पद्धति ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र को अपने में समाहित नहीं कर पाती है।

(7) इस विधि की सबसे बड़ी कमी है कि इसमें अर्जित ज्ञान की पुनरावृति के लिए कोई स्थान नहीं है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

12. प्रोजेक्ट विधि को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

13. प्रोजेक्ट विधि मे शिक्षण के कौन–कौन से पद है?

....

....

....

14. प्रोजेक्ट विधि के क्रियाशीलता के सिद्धांत के बारे मे बताये।

....

....

....

10.8 सारांश

अधिगम अनुभव के फलस्वरूप व्यवहार मे अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है। इन अधिगम अनुभवों को औपचारिक रूप से कक्षा–शिक्षण द्वारा समृद्ध बनाया जाता है। बालक की शिक्षा को एक निश्चित दिशा प्रदान करने हेतु ही शैक्षिक उद्‌देश्यों का निर्धारण किया जाता है। बालक के व्यवहार को ध्यान में रखकर ही बेंजामिन एस० ब्लूम० ने शैक्षिक उद्‌देश्यों को तीन क्षेत्रों यथा– (1) ज्ञानात्मक क्षेत्र (2) भावात्मक क्षेत्र तथा (3) मनोचालक क्षेत्र मे वर्गीकृत किया। इन तीनों क्षेत्रों का उपभागों मे वर्गीकरण और व्यावहारिक क्रियाओं का निर्धारण क्रमशः बी० एस० ब्लूम०, क्रथवाल एंव सिम्पसन ने किया। ज्ञानात्मक क्षेत्र के बेंजामिन एस० ब्लूम० द्वारा किए गये वर्गीकरण और क्रियात्मक क्रिया के संशोधन क्षेत्रीय शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय मैसूर द्वारा किया गया। उसने इस वर्गीकरण को छः की जगह चार वर्गों में सीमित कर दिया। विशिष्ट उद्‌देश्यों के लेखन से शिक्षक को कक्षा शिक्षण के पश्चात छात्रों के व्यवहार मे कौन–कौन से परिवर्तन अपेक्षित है इसका पता चलता है। इन व्यवहार परिवर्तनों की दिशा व दशा का ज्ञान अध्यापक विभिन्न मापन विधियों द्वारा प्राप्त करता है। समस्या समाधान विधि उच्च कक्षाओं में शिक्षण एवं अधिगम की एक लोकतांत्रिक पद्धति है। जिसमें छात्र अधिक सक्रिय एव क्रियाशील होते है। इसी तरह जॉन डी०वी० के शिष्य किलपैट्रिक द्वारा विकसित प्रोजेक्ट विधि अध्ययन की एक लोकप्रिय विधि है। इसमें छात्र प्रोजेक्ट के माध्यम से वास्तविक परिस्थितियों में कार्य करते हुए सीखता है। उपरोक्त दोनों विधियाँ छात्र केंद्रित हैं। इन विधियों द्वारा छात्रों में नेतृत्व, चिंतन, सामाजिकता, सहयोग, क्रियाशीलता जैसे गुणों का विकास होता है। आज इन विधियों का शिक्षण हेतु प्रमुखता से प्रयोग किया जा रहा है।

10.9 अभ्यास के प्रश्न

1. शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण क्यों आवश्यक है? टिप्पणी कीजिए।
2. बेंजामिन एस० ब्लूम० द्वारा ज्ञानात्मक क्षेत्र के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
3. क्रथवाल द्वारा प्रस्तुत भावात्मक क्षेत्र के वर्गीकरण को बताइए।
4. विशिष्ट उद्देश्यों अथवा व्यवहारिक उद्देश्यों की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
5. शिक्षण उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप में लिखना क्यों आवश्यक है।
6. ज्ञानात्मक क्षेत्र के व्यवहारिक उद्देश्य के क्रियात्मक क्रियाओं को क्रमवार बताइये ।
7. समस्या समाधान विधि से आप क्या समझते हैं?
8. प्रोजेक्ट विधि के प्रमुख सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।
9. समस्या समाधान विधि को उपयोगी बनाने के उपाए बतायें।

10.10 चर्चा के बिन्दु

(1) ज्ञानात्मक क्षेत्र के उददेश्यों को व्यवहारिक क्रियाओं के अनुसार लेखन पर चर्चा कीजिए।

(2) कक्षा शिक्षण में समस्या समाधान विधि की उपयोगिता पर चर्चा कीजिए।

(3) प्रोजेक्ट विधि द्वारा शिक्षण कार्य करने पर होने वाले लाभ पर आपस में चर्चा कीजिए।

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शिक्षा की प्रक्रिया को एक निश्चित दिशा प्रदान करने व शिक्षण के उपरांत छात्रों की संप्राप्ति की जाँच के लिए शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण आवश्यक है।
2. सामान्य उद्देश्य शिक्षा के व्यापक उद्देश्य हैं। इनकी प्राप्ति लंबे समय में की जाती है। ये किसी देश के सामाजिक मूल्य, संस्कृति एवं जीवन दर्शन से प्रभावित होते हैं।
3. विशिष्ट अथवा व्यवहारिक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है।
4. ये तीन है–

   1. ज्ञानात्मक क्षेत्र

   2. भावात्मक क्षेत्र

   3. मनोचालक क्षेत्र
5. इनकी संख्या छः है–

   1. ज्ञान

   2 बोध

   3. प्रयोग

   4. विश्लेषण

   5. संश्लेषण

   6 मूल्यांकन
6. क्रथवाल द्वारा 1964 ई० में किया गया।
7. बी० एस० ब्लूम० द्वारा दी गयी व्यावहारिक क्रियायें – परिभाषा देना, चयन करना, प्रत्यास्मरण करना, सूची बनाना, मिलान करना, पहचानना, वर्णन करना आदि।

8. बी० एस० ब्लूम० द्वारा वर्गीकरण के आधार पर उद्देश्यों की व्यावहारिक क्रियायें – उदाहरण देना, व्याख्या करना, संकेत करना, वर्गीकरण करना, अंतर करना, निर्णय लेना, चयन करना, आदि ।

9. कथवाल द्वारा भाषात्मक क्षेत्र के लिए मूल्यांकन हेतु उद्देश्यों की व्यवहारिक क्रिया–पूर्ण करना

10. समस्या समाधान के विधि में शिक्षण के चरण निम्न हैं–

1. समस्या का चयन

2. समस्या का परिभाषीकरण

3. आंकड़ों का संग्रहण

4. समस्या का परीक्षण

5. समाधान का प्रयोग

11. समस्या समाधान विधि के दो गुण–

1. यह छात्र को क्रियाशील बनाती है।

2. छात्र स्वाध्याय में रूचि लेता है।

12. किलपेट्रिक के अनुसार'' योजना सामाजिक वातावरण मे पूर्ण संलग्नता से किया जाने वाला उद्देश्यपूर्ण कार्य है।''

13. प्रोजेक्ट विधि में शिक्षण के पद इस प्रकार हैं–

1. परिस्थिति उत्पन करना 2. योजना का चयन 3 कार्यक्रम बनाना 4. प्रोजेक्ट को पूरा करना 5 योजना का मूल्यांकन 6 योजना का आलेखन

14. क्रियाशीलता का सिद्धांत, किसी कार्य को करके सीखने पर बल देता है। इसके अनुसार क्रिया की व्यवस्था छात्र की क्षमता व शारीरिक तथा मानसिक स्तर के अनुरूप होनी चाहिए।

10.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) पाठक, पी० डी० एंव त्यागी, जी० एस० डी० (1994), 'सफल शिक्षण कला', विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

(2) शर्मा, आर० ए० (2001), 'शिक्षण तकनीकी', सूर्या पब्लिकेशन मेरठ।

(3) गुप्ता, एस० पी० एंव गुप्ता, अलका (2001), 'आधुनिक मापन एंव मूल्यांकन' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

(4) त्रिपाठी, शालिग्राम (1996), 'शिक्षण पद्धति', राधा पॅब्लिकेसन नई दिली 110002।

(5) माथुर, एस०एस० (1994), 'शिक्षण कला' विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

(6) त्यागी, गुरसरनदास (2012), 'वाणिज्या शिक्षण', अग्रवाल पॅब्लिकेसन, आगरा।

(7) http://serc-carleton-edu- "classification of psychomotor domain'

(8) Harrow, A (1972), "A taxonomy of psychomotor domain: "A guide for developing behavioural objectives' David mckay, New York.

(9) Simpson, E.J. (1972), "The classification of educational objectives in the psychomotor domain.' D C gryphion house, Washington.

इकाई 11 : उत्पाद और प्रक्रिया परीणाम आकलन के लिए परीक्षण पदों का निर्माण, नैदानिक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 इकाई के उद्देश्य

11.3 मापन एव मूल्यांकन का सम्प्रत्यय

113.1 मापन का सम्प्रत्यय

11.3.2 मूल्यांकन का सम्प्रत्यय

11.3.3 मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपान

11.3.4 बुनियादी शिक्षण प्रतिमान

11.4 परीक्षण

11.4.1 निदानात्मक परीक्षण

11.4.2 उपचारात्मक शिक्षण

11.5 सारांश

11.6 अभ्यास के प्रश्न

11.7 चर्चा के बिंदु

11.8 बोध प्रश्नों के आदर्श उत्तर

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

किसी भी अध्यापक के लिए छात्र की प्रगति का ज्ञान आवश्यक है। इस हेतु वह कक्षा–शिक्षण से पूर्व शिक्षण के उद्देश्यों की रचना करता है। तत्पश्चात् वह शिक्षण के उददेश्यों के अनुरूप शिक्षण की प्रक्रिया को पूर्ण करता है। कक्षा शिक्षण की समाप्ति पर अध्यापक यह जानना चाहता है कि जिन उददेश्यों को ध्यान में रख कर उसने शिक्षण कार्य किया है उसकी पूर्ति हुई या नहीं। यदि हुई है तो किस सीमा तक उद्देश्यों की प्राप्ति हुई है। यदि उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो सकी तो उसके क्या कारण थे? अगर उद्देश्यों की प्राप्ति नही होती है तो अध्यापक उसके कारणों का पता लगाने हेतु जिन मापन उपकरणों का सहारा लेता है, उसे निदानात्मक परीक्षण कहते हैं। कारण का पता चल जाने पर उनको दूर करने के लिए जिस शिक्षण पद्धति का उपयोग करता है उसे उपचारात्मक शिक्षण पद्धति कहते है। इस इकाई में हम मापन एव मूल्यांकन से आशय, मूल्यांकन के सोपान, बुनियादी शिक्षण प्रतिमान, निदानात्मक परीक्षण एव उपचारात्मक शिक्षण के बारे मे विस्तृत अध्ययन करेंगे।

11.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. मापन को परिभाषित कर सकेंगे।
2. मूल्यांकन का सम्प्रत्यय बता सकेंगे।
3. मूल्यांकन के सोपानों को बता सकेंगे।
4. बुनियादी शिक्षण प्रतिमान के बारे में समझा सकेंगे।

5. निदानात्मक परीक्षण की उपयोगिता से परिचित हो सकेंगे

6. उपचारात्मक शिक्षण के महत्व का प्रत्यास्मरण कर सकेंगे।

11.3 मापन एवं मूल्यांकन का सम्प्रत्यय

मापन एवं मूल्यांकन द्वारा शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया को गति एवं दिशा प्रदान की जाती है। मूल्यांकन के अभाव में शिक्षक को शिक्षणोपरांत अपने शिक्षण को प्रभावशीलता एवं छात्रों के सीखने के स्तर का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए शिक्षक को मापन एवं मूल्यांकन का ज्ञान होना अति आवश्यक है। जिससे वह छात्रों की प्रगति एवं अपने कार्य की सफलता के बारें में जानकारी प्राप्त कर सके।

11.3.1 मापन का सम्प्रत्यय

मापन शब्द का प्रयोग अत्यंत प्राचीन काल से दैनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बहुतायत से किया जाता रहा है। प्रत्येक व्यक्ति दैनिक जीवन में विभिन्न कार्यों के दौरान अनेक प्रकार से मापन करता है। जैसे–वस्त्र विक्रेता कपड़ा नाप कर देता है, ग्वाला दूध नाप कर देता है, फल एवं सब्जी विक्रेता तोल कर ग्राहको को देता है, कार चालक कार की गति देखकर ही कार चलता है, बिजलीकर्मी बिजली की खपत मापकर ही उपभोक्ता को खपत की मात्रा एवं उसका मूल्य बताता है। ये सभी दैनिक जीवन में मापन के सरल उदाहरण हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी हम छात्रों को उनकी उपलब्धि के अनुसार प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी में बाँटते है। एस०एस० स्टीवेन्स ने मापन को परिभाषित करते हुए लिखा है– ''मापन किन्ही स्वीकृत नियमों के अनुसार वस्तुओं को अंक प्रदान करने की प्रक्रिया है।''

मापन की उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि मापन के द्वारा व्यक्तियों या वस्तुओं में उपस्थित किसी गुण अथवा विशेषता का मापन होता है। यह मापन गुणात्मक भी हो सकता है और मात्रात्मक भी हो सकता है। मापन की प्रक्रिया में तीन मूलभूत बातें निहित रहती हैं–

(1) व्यक्तियों या वस्तुओं के किसी समूह का होना जिसके सदस्य के किसी गुण अथवा विशेषता का मापन करना हो ।

(2) अंको, अक्षरों, अथवा संकेतों के किसी समूह का होना जो संदर्भित गुण/विशेषता के प्रकार अथवा मात्रा की विभिन्न स्थितियों को अभिव्यक्त कर सके।

(3) व्यक्तियों/वस्तुओं को उनके गुणों/विशेषतओ के आधार पर अंक प्रदान करने के लिए किन्हीं पूर्व निर्धारित तथा मान्य नियमों का होना।

यद्यपि साधारणतः शैक्षिक मापन का तात्पर्य छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के सन्दर्भ में किया जाता है। परन्तु वास्तव में शिक्षा में किए जाने वाले सभी मापन शैक्षिक मापन के अन्तर्गत आते हैं। जैसे– बुद्धि का मापन, व्यक्तित्व का मापन, रूचि का मापन, अधिगम का मापन, आदि। निःसंदेह मापन एक ऐसी वर्णनात्मक प्रक्रिया है। जिसमें व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के किन्ही गुणों अथवा विशेषता का क्रमबद्ध वर्णन किया जाता है।

11.3.2. मूल्यांकन का सम्प्रत्यय

मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ मूल्य का अंकन करना है। दूसरे शब्दों में मूल्यांकन मूल्य निर्धारण की एक प्रक्रिया है। मापन की अपेक्षा मूल्यांकन अधिक व्यापक है। मापन के अंतर्गत किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के गुणों अथवा विशेषतओं का वर्णन मात्र ही किया जाता है। जबकि मूल्यांकन के अंतर्गत उस व्यक्ति अथवा वस्तु के गुणों अथवा विशेषतओं की वांछनीयता पर दृष्टिपात किया जाता है। अतः मापन वास्तव में मूल्यांकन का एक अंग मात्र है। मूल्यांकन एक ऐसा कार्य अथवा प्रक्रिया है जिसमें मापन से प्राप्त परिणामों की वांछनीयता का निर्णय लिया जाता है। वस्तुतः किसी गुण या विशेषता की कितनी मात्रा व्यक्ति में उपलब्ध है इस प्रश्न का उत्तर मापन से प्राप्त होता है। जबकि उस व्यक्ति में उपस्थित गुण अथवा विशेषता की मात्रा किसी उद्देश्य की दृष्टि से कितनी संतोषप्रद है अथवा कितनी वांछनीय है इस प्रश्न का उत्तर मूल्यांकन से पता चलता है। एच०एच० मार्श तथा एन० एल० गेज के शब्दों में–'' मूल्यांकन में व्यक्ति अथवा समाज अथवा दोनो की दृष्टि से क्या अच्छा है अथवा क्या वांछनीय है का विचार या लक्ष्य निहित रहता है।''

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने मूल्यांकन के सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह एक ऐसी सतत् एंव व्यापक प्रक्रिया है जो देखती है कि (1) निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो रही है। (2) कक्षा में दिए गये अधिगम अनुभव कितने प्रभावशाली रहे हैं। तथा (3) शिक्षा के उद्देश्य कितने अच्छे ढ़ंग से पूर्ण हो रहे हैं। मापन की तरह मूल्यांकन भी व्यक्ति अथवा वस्तुओं के किसी भी गुण के संदर्भ में किया जा सकता है। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में सधारणतः मूल्यांकन से अभिप्राय छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के सन्दर्भ में लगाया जाता है। मूल्यांकन प्रक्रिया में किसी कार्यक्रम के द्वारा प्राप्त उद्देश्यों अथवा उपलब्धियों की वांछनीयता को ज्ञात किया जाता है।

11.3.3 मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपान

मूल्यांकन का प्रत्यय इस मूलभूत मान्यता पर आधारित है की शिक्षा संस्था का कार्य छात्रों को सीखने में सहायता करना है। सीखने के दौरान छात्रों के व्यवहार में जिन परिवर्तनों को लाने को हम इच्छुक होते हैं उन्हें शिक्षा के उद्देश्यों के नाम से पुकारा जाता है। इन शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विद्यायलय में विभिन्न अधिगम क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। ये अधिगम क्रियाए निर्धारित उद्देश्यों की प्रप्ति में किस सीमा तक सफल रही हैं यह देखना मूल्यांकन प्रक्रिया का कार्य है। स्पष्ट है कि मूल्यांकन में शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति की वांछनीयता को देखा जाता है। इस प्रकार मूल्यांकन की प्रक्रिया के तीन प्रमुख अंग है –

(1) शिक्षण उद्देश्य

(2) अधिगम क्रियाएं

(3) व्यवहार परिवर्तन

जिसे निम्नांकित चित्र से भी समझा जा सकता है–

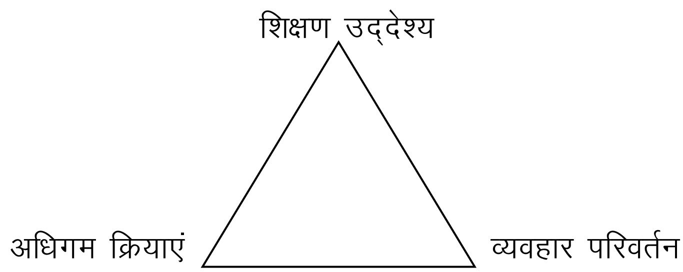

मूल्यांकन के ये तीनों अंग परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित तथा परस्पर निर्भर हैं। मूल्यांकन का यह नवीन प्रत्यय केवल पाठ्यपुस्तक के ज्ञान तक ही सीमित नही है वरन् विद्यालय पाठ्यक्रम से सम्बन्धित समस्त उद्देश्यों की एक व्यापक श्रृंखला का मूल्यांकन करते हैं।

11.3.4 बुनियादी शिक्षण प्रतिमान

राबर्ट ग्लेसर (1962) ने इस शिक्षण प्रतिमान को विकसित किया है। यह प्रतिमान कक्षा शिक्षण हेतु उसकी तैयारी से लेकर मूल्यांकन तक की क्रिया की क्रमबद्ध व्याख्या करता है। यह प्रतिमान मनोवैज्ञानिक होने के साथ–साथ पूरी तरह से शैक्षिक तकनीकी पर आधारित मॉडल प्रस्तुत करता है। इसमें कक्षा शिक्षण की प्रक्रिया के प्रत्येक सोपान की विधिवत व्याख्या की गई है। इस प्रतिमान में शिक्षण प्रक्रिया को चार पक्षों में विभक्त किया गया है। जो इस प्रकार है–

(1) अनुदेशनात्मक उद्देश्य

(2) पूर्व–व्यवहार

(3) अनुदेशनात्मक प्रक्रिया

(4) निष्पत्ति का मूल्यांकन

1 अनुदेशनात्मक उद्देश्य–

इस प्रतिमान में अनुदेशनात्मक उद्देश्य से तात्पर्य उन व्यवहारों से है जो शिक्षक द्वारा कक्षा–शिक्षण से पूर्व की जाती है। इस स्तर पर शिक्षक कक्षा–शिक्षण के उददेश्यों का निर्धारण करता है अर्थात वह शैक्षिक उद्देश्यों को उन व्यवहार परिवर्तनों के रूप में लिखता है जिनको वह शिक्षण के पश्चात् अपने छात्रों के अंदर देखना चाहता है। इसके अतिरिक्त अध्यापक इस स्तर पर कक्षा शिक्षण से सम्बन्धित समस्त तैयारी करता है।

2 पूर्व व्यवहार–

इस भाग में शिक्षक छात्रों के पूर्व व्यवहार की समीक्षा करता है। अर्थात वह यह देखता है कि अध्यापक जिस पाठ का शिक्षण करने जा रहा उसको पढ़ने से पूर्व का आवश्यक ज्ञान छात्रों में है अथवा नहीं। क्योंकि अगर छात्रों मे पढ़ाये जाने वाले पाठ से सम्बन्धित पूर्व ज्ञान नहीं है तो अध्यापक द्वारा किया जा रहा शिक्षण प्रभावशाली नहीं होगा। क्योंकि छात्र वर्तमान में दिए जा रहे ज्ञान को पूर्व ज्ञान से नहीं जोड़ पायेंगे। फलतः उन्हें सीखने मे सफलता नहीं मिलेगी। जैसे– कक्षा में छात्रों को गुणा की संक्रिया बताने से पूर्व उन्हे जोड़ एंव घटाने की संक्रिया आनी चाहिए। यदि उन्हें जोड़ अथवा घटाने की संक्रिया नहीं आती है तो गुणा की संक्रिया वे नहीं सीख पायेंगे। भले ही अध्यापक कितना भी अच्छा पढ़ाये। इसी भाग में छात्रों को नवीन पाठ को सीखने के लिए मानसिक रूप से तैयार करना होता है। इस हेतु अध्यापक पाठ प्रस्तावना का सहारा लेते हैं।

3 अनुदेशात्मक क्रिया–

इस भाग में अध्यापक पूरी तैयारी के साथ कक्षा शिक्षण का कार्य करता है। वह प्रस्तुतीकरण को सरल प्रभावशाली व बोध योग्य बनाने हेतु विभिन्न शिक्षण कौशलों, शिक्षण युक्तियों, शिक्षण तकनीकी तथा शिक्षण सहायक समाग्री का उपयोग करता है।

4 निष्पति का मूल्यांकन–

कक्षा–शिक्षण के पश्चात शिक्षक यह जानना चाहता है कि उन उद्देश्यों की प्राप्ति कहाँ तक हो सकी है जिनको ध्यान में रखकर उसने शिक्षण कार्य किया है। अगर उद्देश्यों की प्राप्ति हुई है तो किस सीमा तक हुई है। अगर कोई कमी रह गई है तो किस कारण रह गई है। इस हेतु वह आवश्यकता अनुसार मापन के विभिन्न उपकरणों/परीक्षणों की सहायता लेता है। अगर संतुष्ट नहीं होता है तो पृष्ठपोषण के द्वारा किस स्तर पर कमी रह गई है, इसका पता लगाने का प्रायास करता है। इस हेतु वह पीछे से आगे की तरफ बढ़ता है। अर्थात् सबसे पहले वह मापन व मूल्यांकन की प्राक्रिया की जाँच करता है। इस स्तर पर वह संतुष्ट होने पर अनुदेशनात्मक प्रक्रिया की जाँच करता है। अगर यहाँ भी संतुष्ट हुआ तो छात्र के पूर्व व्यवहार की जाँच करता है। यहाँ भी कोई कमी नहीं मिलने पर वह अनुदेशनात्मक उददेश्यों की जाँच करता है। इस तरह पृष्ठपोषण की प्रक्रिया द्वारा उसे किसी ना किसी स्तर पर हुई चूक का पता चल जाता है। इस हेतु वह नैदानिक परीक्षण का भी सहारा लेता है। आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक उपचारात्मक शिक्षण भी करता है। बुनियादी शिक्षण प्रतिमान मे शिक्षण की प्रक्रिया को निम्न चित्र द्वारा भी समझा जा सकता है–

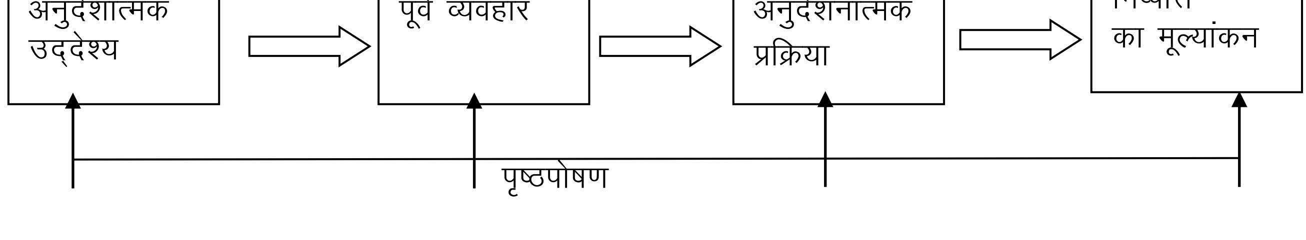

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. मापन को परिभाषित कीजिए।

....
....
....

2. मूल्यांकन के सोपान बताइए ।

....
....
....

3. बुनियादी शिक्षण प्रतिमान के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया के कौन–कौन से अंग है?

....
....
....

11.4 परीक्षण (Test)

परीक्षण वे उपकरण हैं जो किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के किसी समूह के व्यवहार का क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित ज्ञान प्रदान करते हैं। परीक्षण से तात्पर्य किसी व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में रखने से है जो उसके वास्तविक गुणों को प्रकट कर दे। विभिन्न प्रकार के गुणों को मापने के लिए विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण स्वरूप छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियां ज्ञात करने के लिए उपलब्धि परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। इसी तरह छात्रों को सीखने में आ रही कठिनाइयों को जानने के लिए निदानात्मक परीक्षण का प्रयोग किया जाता है।

11.4.1 निदानात्मक परीक्षण

जिस प्रकार डॉक्टर किसी रोग के इलाज से पूर्व रोग के उत्पन होने के कारणों की जाँच करता है। उसी तरह अध्यापक शिक्षण कार्य के उपरांत यह देखता है कि छात्र के अंदर अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन नहीं हो रहा है, तो वह सीखने की प्रक्रिया में बाँधा पहुंचा रहे कारकों की पहचान के लिए एक विशेष परीक्षण का सहारा लेते हैं। जिसे निदानात्मक परीक्षण कहते हैं। इस नैदानिक परीक्षण के आधार पर अध्यापक अधिगम मे बाधक कारकों की पहचान कर लेता है। नैदानिक शब्द चिकित्सा विज्ञान से आया है, जिसका उपयोग शिक्षाशास्त्र व अन्य सामाजिक विज्ञानों में होता है। नैदानिक परीक्षण एक ऐसा शैक्षिक उपादान है जिसके आधार पर पठित विषय वस्तु की सूक्ष्म से सूक्ष्म इकाई में बालक की विशिष्टता एंव कमियों का पता चल जाता है। नैदानिक परीक्षण से यह पता चल जाता है कि विषय वस्तु का कौन सा भाग किस मात्रा में सीखा गया है तथा कितना भाग छात्र सीखने में असमर्थ रहा है और कौन से कारण छात्र के सीखने में बाधा पहुँचा रहे हैं। स्पष्ट है कि निदानात्मक परीक्षण द्वारा छात्रों को विषय को सीखने में आ रही बाधाओं की पहचान की जाती है। उदाहरणस्वरूप कोई छात्र गणित विषय में गुणा की संक्रिया सीखने से पूर्व आवश्यक जोड़, घटाना व पहाड़ा की संक्रिया नहीं आती। इसका पता चल जाने पर वह पहले छात्र को इन संक्रियाओं को करने में निपुण बनाएगा तब पुनः गुणा की संक्रिया छात्र को सिखलाएगा। क्रो एवं क्रो के अनुसार ''निदानात्मक परीक्षण का निर्माण छात्रों की अधिगम सम्बन्धी विशिष्ट कठिनाईयों का ज्ञान प्राप्त करने या निदान करने के लिए किया

जाता है। उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि नैदानिक परीक्षण से तात्पर्य समस्या अन्वेषण एवं उनके समाधान से है। बालक सामान्यतया वाचन, लेखन जैसे व्याकरणीय व विभिन्न प्रकार की गलतियाँ करता है। जिसका पता नैदानिक परीक्षक द्वारा लगाकर अध्यापक इन दोषों को दूर करता है। शिक्षण अधिगम को सुगम्य व प्रभावशाली बनाने हेतु अध्यापक निम्नलिखित नैदानिक विधियों का प्रयोग करता है –

(1) साक्षात्कार विधि

(2) निरीक्षण विधि

(3) संप्राप्ति परीक्षण

(4) नैदानिक परीक्षण

(5) पृष्ठभूमि की जाँच

11.4.1.1 निदानात्मक परीक्षण का महत्व

निदानात्मक परीक्षण के द्वारा बालक की सीखने सम्बन्धी कठिनाइयों का पता लगाया जाता है। अतएव नैदानिक परीक्षण शिक्षक के लिए अत्यंत उपयोगी है। इस परीक्षण का महत्व निम्नलिखित है–

(1) बाल केंद्रित शिक्षा के लिए उपयोगीः–

नैदानिक परीक्षण की सहायता से अध्यापक अपनी कक्षा के छात्रों की व्यक्तिगत–विभिन्नता का पता कर लेता है। छात्र ने विषयवस्तु को कहाँ तक सीखा है? क्या नही सीख पाया है? छात्र को सीखने में बाधक कारक कौन–कौन से है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर नैदानिक परीक्षण द्वारा ही मिल सकता है।

(2) शैक्षिक परिस्थितियों के लिए उपयोगीः–

एक अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह कुशल निदानकर्ता हो। इसके अभाव में वह छात्र को सीखने में आ रही कठिनाइयों की पहचान नहीं कर पाएगा। अतः शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह अत्यंत उपयोगी है।

(3) श्रम एवं समय की बचतः–

नैदानिक परीक्षण के द्वारा छात्र की कठिनाइयों का पता लगाकर अध्यापक द्वारा उन कठिनाइयों को दूर कर दिया जाता है। इससे अध्यापक का श्रम एवं समय दोनों बचता है।

(4) शिक्षण विधि के सुधार में सहायकः–

नैदानिक परीक्षण द्वारा छात्रों को सीखने में आ रही कठिनाइयों का पता ही नहीं लगाया जाता अपितु यह अध्यापक के शिक्षण विधि की कमियों का पता लगाकर उसके सुधार में सहायक होता है।

(5) उपचारात्मक शिक्षण से पूर्व निदानात्मक परीक्षण की आवश्यकताः–

नैदानिक परीक्षण द्वारा पता लगाए गये कमियों को ही उपचारात्मक शिक्षण द्वारा दूर किया जाता है। इसके अभाव मे उपचारात्मक शिक्षण संभव नहीं है।

11.4.1.2 नैदानिक परीक्षण के प्रमुख उद्देश्य

नैदानिक परीक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैः–

1. विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाना।
2. किसी विषय में पिछड़े हुए बालक की विशिष्ट कमजोरियों का पता लगाना तथा उन कमजोरियों को दूर करने के लिए उपचारात्मक सुझाव देना।
3. निदानात्मक परीक्षण, उपचारात्मक शिक्षण हेतु पदों के निर्धारण में सहायता प्रदान करता है।
4. नैदानिक परीक्षण द्वारा छात्रों की अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों का ज्ञान हो जाता है। इससे अध्यापक का काम आसान हो जाता है, उसे एक दिशा मिलती है। वह छात्र की कठिनाइयों को ध्यान में रखकर

अपने शिक्षण विधि में सुधार लाता है।

5. निदानात्मक परीक्षण से प्राप्त परिणामों के आधार पर पाठ्यसामग्री में सुधार किया जाता है।
6. नैदानिक परीक्षण से छात्र के किसी विशिष्ट कमियों का संकेत मिल जाता है। जिससे उपचारात्मक शिक्षण द्वारा दूर कर लिया जाता है।
7. निदानात्मक परीक्षण के उपरांत ही उपचारात्मक शिक्षण किया जाता है ।

11.4.2 उपचारात्मक शिक्षण

उपचारात्मक शिक्षण द्वारा छात्र को सीखने में आ रही कठिनाइयों को दूर किया जाता है। सामान्यतः निदानात्मक परीक्षण द्वारा अध्यापक को छात्र के सीखने में आ रही समस्याओं की जानकारी प्राप्त हो जाती है। अतः अध्यापक उन समस्याओं को दूर करने हेतु विशेष प्रकार के शिक्षण का सहारा लेता है जिसे उपचारात्मक शिक्षण या ट्यूटोरियल्स विधि भी कहा जाता है। उपचारात्मक शिक्षण के उपरांत छात्रों को सीखने में आ रही समस्या दूर हो जाती है फलस्वरूप वह सामान्य छात्रों के साथ विषय–वस्तु को सीखने लगता है। अध्यापक शिक्षण अधिगम की परिस्थितियों में निरंतरता एवं क्रमबद्धता रखने हेतु निदानात्मक परीक्षण से प्राप्त निष्कर्ष के अनुरूप उपचारात्मक शिक्षण का प्रयोग करता है। सीखने में कमजोर, औसत से नीचे अथवा निम्न स्तर के छात्रों की कठिनाइयों को ध्यान में रखकर अध्यापक उनके लिए विशिष्ट उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करता है। डॉ रामशकल पाण्डेय के अनुसार ''उपचारात्मक शिक्षण बालक के शैक्षिक विकास में सहयोगी होता है। जिस प्रकार रोगी उपचार के बाद पूर्ण स्वस्थ हो जाता है ठीक उसी प्रकार छात्र शैक्षिक उपचार पाकर, शैक्षिक विकास करता है।''

11.4.2.1 उपचारात्मक शिक्षण की विधियाँ

सामान्य रूप से उपचारात्मक शिक्षण की दो विधियॉ प्रचलित हैं–

(1) सामूहिक विधि

(2) वैयक्तिक विधि

1. उपचारात्मक शिक्षण की सामूहिक विधि

उपचारात्मक शिक्षण की सामूहिक विधि का प्रयोग करते समय निम्नलिखित उपाय अपनाए जाते हैं–

(1) साधारण अभ्यास विधि

(2) विशिष्ट अभ्यास विधि

(3) सामूहिक शिक्षण विधि

(4) गोष्टी विधि

(5) वाद–विवाद विधि

(6) क्रियात्मक शिक्षण विधि

2. उपचारात्मक शिक्षण की वैयक्तिक विधि

उपचारात्मक शिक्षण की वैयक्तिक विधि का प्रयोग करते समय निम्न तरीकों का प्रयोग किया जाता है–

(1) साधारण अभ्यास विधि

(2) विशिष्ट अभ्यास विधि

(3) प्रोत्साहन विधि

(4) क्रियाविधि

(5) अन्वेषण विधि

(6) स्वतः अध्ययन विधि

11.4.2.2 उपचारात्मक शिक्षण के लाभ

उपचारात्मक शिक्षण के निम्न लाभ है–

(1) छात्रों की शैक्षिक समस्या का समाधान हो जाता है।

(2) छात्र की समस्याओं का समाधान करके उसके व्यवहार एवं वातावरण में अनुकूलन किया जाता है।

(3) उपचारात्मक शिक्षण द्वारा छात्र का तनाव दूर कर विषय में उसकी रूचि को जागृत करने में मदद मिलती है।

(4) उपचारात्मक शिक्षण द्वारा त्रुटियों का संशोधन करके सीखने की गति में तीव्रता लाई जाती है।

(5) उपचारात्मक शिक्षण द्वारा छात्र की शिक्षा को सही दिशा प्रदान किया जाता है।

11.4.2.3 उपचारात्मक शिक्षण के दोष

उपचारात्मक शिक्षण में कुछ दोष भी निहित है जो निम्न है–

(1) अध्यापक अधिक सक्रिय रहता है।

(2) छात्र की रूचि, उपयोगिता का ध्यान नहीं रखा जाता।

(3) उपचारात्मक शिक्षण हेतु योग्य शिक्षकों का अभाव है।

(4) अध्यापक की अतिसक्रियता छात्र को कुंठित कर सकती है ।

(5) उपचारात्मक शिक्षण में समय का अपव्यय होता है।

11.4.2.4 उपचारात्मक शिक्षण के समय ध्यान रखने योग्य बातें

कुछ ध्यान रखने योग्य बाते हैं जिससे उपचारात्मक शिक्षण उपयोगी हो जाता है–

(1) छात्र की समस्याओं का सम्यक ज्ञान होना चाहिए।

(2) उपचारात्मक शिक्षण करते समय छात्र की रूचि का ध्यान रखा जाना चाहिए।

(3) शिक्षण क्रम में छात्र को जहां कठिनाई मालूम पड़ती है उपचारात्मक शिक्षण वहीं से प्रारंभ करना चाहिए।

(4) उपचारात्मक शिक्षण करते समय शिक्षण सूत्रों का प्रयोग करना चाहिए।

(5) सप्रयोजन अभ्यास कार्य की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(6) उपचारात्मक शिक्षण में नीरसता नहीं होनी चाहिए ।

(7) छात्र को उसकी प्रगति का ज्ञान कराते रहना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. क्रो एवं क्रो के अनुसार निदानात्मक परीक्षण की परिभाषा बताएं।

....

....

5. निदानात्मक परीक्षण के कोई दो प्रमुख उद्देश्य बताएं।

....

....

6. उपचारात्मक शिक्षण के कोई दो लाभ बताएं।

....

....

11.5 सारांश

शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया का आयोजन पूर्व निर्धारित उददेश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। अध्यापक शिक्षण के उपरांत यह जानना चाहता है कि उसके द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई हैं अथवा छात्र ने कितना सीखा है। इस हेतु वह विभिन्न विधियों का सहारा लेता है और मूल्यांकन के द्वारा निष्कर्ष पर पहुँचता है। मूल्यांकन के द्वारा यदि शिक्षक को पता चलता है कि छात्रों में संप्राप्ति का स्तर संतोषजनक नहीं है तो बुनियादी शिक्षण प्रतिमान के अनुरूप पृष्ठपोषण का सहारा लेता है और निदानात्मक परीक्षण के द्वारा छात्रों को सीखने में आ रही समस्याओं का पता लगाता है। निदानात्मक परीक्षण द्वारा समस्याओं के कारणों का पता चल जाने पर अध्यापक उपचारात्मक शिक्षण द्वारा उन कमियों को दूर करता है। इससे छात्र विषय में सामान्य छात्रों के साथ सीखते हुए प्रगति करता है।

11.6 अभ्यास के प्रश्न

(1) मापन को परिभाषित कीजिए।

(2) मूल्यांकन के कौन–कौन से अंग हैं।

(3) बुनियादी शिक्षण प्रतिमान के मॉडल को समझाइए।

(4) नैदानिक परीक्षण का महत्व बताएं।

(5) उपचारात्मक शिक्षण के गुण दोष लिखिए।

11.7 चर्चा के बिन्दु

(1) मूल्यांकन की प्रक्रिया पर चर्चा कीजिए।

(2) नैदानिक परीक्षण और उपचारात्मक शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्व पर सामूहिक चर्चा कीजिए।

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) एस०एस० स्टीवेन्स के शब्दों में ''मापन किन्ही स्वीकृत नियमों के अनुसार वस्तुओं को अंक प्रदान करने की प्रक्रिया हैं।''

(2) मूल्यांकन के तीन सोपान है–

(i). शैक्षिक उद्देश्यो का निर्धारण
(ii). शिक्षण अधिगम क्रियाओं का आयोजन
(iii). व्यवहार परिवर्तनों की जांच

(3) बुनियादी शिक्षण प्रतिमान के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया के अंग निम्नलिखित हैं–

(i). अनुदेशात्मक उद्देश्य
(ii). पूर्व व्यवहार
(iii). अनुदेशात्मक क्रिया
(iv). निष्पत्ति का मूल्यांकन

(4) क्रो एवं क्रो के अनुसार ''निदानात्मक परीक्षण का निर्माण छात्रों की अधिगम सम्बन्ध ी विशिष्ट कठिनाइयों का ज्ञान प्राप्त करने अथवा निदान करने के लिए किया जाता है।''

(5) निदानात्मक परीक्षण के दो प्रमुख उद्देश्य–

(i). किसी विषय में पिछड़े छात्र की विशिष्ट समस्याओं का पता लगाना तथा उन समस्याओं को दूर करने हेतु उपचारात्मक सुझाव देना।
(ii). निदानात्मक शिक्षण के उपरांत ही उपचारात्मक शिक्षण किया जा सकता है ।

(6) उपचारात्मक शिक्षण के दो लाभ–

(i). छात्रों को सीखने में आ रही समस्या का समाधान हो जाता है।
(ii). उपचारात्मक शिक्षण द्वारा त्रुटियों/समस्याओं को दूर करके छात्र के सीखने की गति में तीव्रता लाई जाती है।

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) पाठक, पी० डी० एंव त्यागी, जी० एस० डी० (1994), 'सफल शिक्षण कला', विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

(2) शर्मा, आर० ए० (2001), 'शिक्षण तकनीकी', सूर्या पब्लिकेशन मेरठ।

(3) गुप्ता, एस० पी० एंव गुप्ता, अलका (2001), 'आधुनिक मापन एंव मूल्यांकन', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

(4) त्रिपाठी, शालिग्राम (1996), 'शिक्षण पद्धति', राधा पॅब्लिकेसन नई दिली 1100021

(5) त्यागी, गुरसरनदास (2012), 'वाणिज्य शिक्षण, अग्रवाल पॅब्लिकेसन, आगरा।

इकाई 12 : इकाई परीक्षण का निर्माण, विशिष्टीकरण तालिका (ब्लूप्रिन्ट), प्रश्न पत्र का निर्माण

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 इकाई के उद्देश्य

12.3 इकाई परीक्षण का निर्माण

12.3.1 इकाई परीक्षण की विशेषताएँ

12.4 विशिष्टीकरण तालिका (ब्लूप्रिन्ट)

12.4.1 विशिष्टीकरण तालिका से लाभ

12.4.2 विशिष्टीकरण तालिका के दोष

12.5 प्रश्न पत्र का निर्माण

12.5.1 प्रश्न पत्र (परीक्षण) निर्माण की योजना बनाना

12.5.2 प्रश्न पत्र हेतु प्रश्नों की रचना करना

12.5.3 प्रश्न पत्र हेतु प्रश्नों का चयन करना

12.5.4 परीक्षण का मूल्यांकन करना

12.6 सारांश

12.7 अभ्यास के प्रश्न

12.8 चर्चा के बिन्दु

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

विद्यालय समाज का एक अंग है। विद्यालयों में छात्रों को दी जा रही शिक्षा के प्रति संपूर्ण समाज संवेदनशील होता है। समाज के अंग के रूप में अभिभावक, शिक्षक व सरकारें समय–समय पर छात्रों को दी जा रही शिक्षा की प्रगति व उपयोगिता की जांच करना आवश्यक समझते हैं। इस हेतु लिखित व मौखिक दोनों तरह की परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। अध्यापक विद्यालय स्तर पर अथवा किसी कक्षा के स्तर पर विद्यार्थियों के ज्ञान की प्रगति की समीक्षा करना चाहता है, तो सरकार एक निश्चित अंतराल पर समीक्षा करती है। जब अध्यापक अपने स्तर पर जांच करता है तो वह उसके लिए स्वयं परीक्षण का निर्माण करता है, उसका प्रशासन करता है और परिणामों की समीक्षा करता है। जिसे अध्यापक निर्मित परीक्षण अथवा इकाई परीक्षण कहते हैं। यह मासिक, त्रैमासिक, छमाही, वार्षिक अथवा पाठ की समाप्ति पर भी किया जा सकता है। इससे अध्यापक को छात्र के सीखने की गति व स्तर का पता चल जाता है। जिस के अनुरूप वह अपने शिक्षण में सुधार लाता है। छात्रों के अभिभावकों को भी अभिभावक शिक्षक बैठक के माध्यम से उनके बच्चों की प्रगति के बारे में समय समय पर अवगत कराया जाता है। हमारे देश में राज्य और केंद्र की सरकार भी अपने अपने शिक्षा बोर्ड के माध्यम से बच्चों के शिक्षा के स्तर की जांच करती है व उन्हें अगली कक्षा में प्रोन्नत करने अथवा न करने का निर्णय लेती हैं। प्रायः बड़ी परीक्षाओं में प्रमापीकृत प्रश्न पत्र का प्रयोग छात्र के ज्ञान के परीक्षण हेतु किया जाता है। इस इकाई में हम सभी इन परीक्षणों के निर्माण की विधि के बारे में अध्ययन करेंगे।

12.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

(1) इकाई परीक्षण के लाभ समझा सकेंगे।

(2) प्रश्न पत्र निर्माण में ब्लू प्रिंट की महत्ता बता सकेंगे।

(3) प्रश्न पत्र निर्माण के सोपानों को बता सकेंगे।

(4) आवश्यकता अनुसार प्रश्न पत्र का निर्माण कर सकेंगे।

12.3 इकाई परीक्षण का निर्माण

इकाई परीक्षण का निर्माण अध्यापक पाठ के शिक्षण के पश्चात् यह जानने के लिए करता है कि जिन शिक्षण उद्देश्य को लेकर उसने अनुदेशात्मक क्रिया संपन्न की है उसकी प्राप्ति कहां तक हुई है? इस हेतु अध्यापक पाठ या इकाई से शिक्षण उद्देश्य पर आधारित कुछ प्रश्नों की रचना करता है। उन प्रश्नों का प्रशासन छात्रों पर करके वह उनके ज्ञान के स्तर की जांच करता है। कभी–कभी अध्यापक मौखिक प्रश्नोत्तर के माध्यम से भी छात्रों के ज्ञान का परीक्षण करता है। वह क्रियात्मक परीक्षण का भी सहारा लेता है। अतः परीक्षण का स्वरूप इस पर निर्भर करता है कि अध्यापक किस तरह के ज्ञान अथवा कौशल का परीक्षण करना चाहता है। सामान्यतया इसे अध्यापक निर्मित परीक्षण भी कहा जाता है। अध्यापक द्वारा इसका निर्माण अपने कक्षा अथवा पाठ के शैक्षिक उद्देश्य के आलोक में छात्र के संप्राप्ति स्तर की जांच हेतु किया जाता है। यह परीक्षण प्रमापीकृत नहीं होता है। इसका निर्माण आसान होता है। इसकी वैधता और विश्वसनीयता की जांच नहीं की जाती। इसके परिणामों का सामान्यीकरण भी नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसके परिणाम उसी कक्षा के छात्रों पर लागू होते हैं जिसके लिए इनका निर्माण किया गया होता है। अध्यापक अपनी सुविधानुसार इसका प्रयोग कक्षा के छात्रों की उपलब्धि का मूल्यांकन करने के लिए करता है। इस प्रकार के परीक्षण के एकांश का निर्माण करने के लिए किसी विशिष्ट कौशल की आवश्यकता नहीं होती। इसके द्वारा अध्यापकों को छात्रों के प्रगति की समय–समय पर जांच करने में मदद मिलती है। इकाई परीक्षण के निर्माण हेतु शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर समस्त पाठ्य वस्तु से प्रश्नों की रचना की जाती है। तदुपरांत उसे प्रश्नावली का रूप देकर छात्रों के सन्मुख उनकी संप्राप्ति की जांच हेतु प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि अध्यापक निर्मित परीक्षणों की विश्वसनीयता और वैधता की जांच नहीं की जाती है। परंतु शैक्षिक उद्देश्यों पर आधारित होने के कारण यह परीक्षण वैध और विश्वसनीय होते हैं।

12.3.1. इकाई परीक्षण की विशेषताएं

(1) यह छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि या योग्यता का मूल्यांकन करने में सहायता प्रदान करता है। इससे छात्रों के सीखने के स्तर का पता चलता है।

(2) इस परीक्षण द्वारा अध्यापकों को उसके शिक्षण कौशल की प्रभावशीलता का पता चलता है। अतः वह आवश्यकतानुसार अपने शिक्षण कला में परिवर्तन या परिमार्जन करता है। जिससे उसे भविष्य में शिक्षण कार्य में बेहतर सफलता प्राप्त हो सके।

(3) इस परीक्षण द्वारा छात्रों की सीखने सम्बन्धी कठिनाइयों का पता लगाकर उसका निराकरण किया जाता है।

(4) इस प्रकार के परीक्षण सामान्यत वैध व विश्वसनीय होते हैं। यद्यपि इनकी विश्वसनीयता और वैधता की जांच नहीं की जाती है ।

(5) इस प्रकार के परीक्षणों से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर अग्रिम शैक्षिक कार्यक्रम में आवश्यकतानुसार संशोधन किया जाता है।

(6) इन परीक्षणों का प्रयोग केवल किसी कक्षा अथवा विद्यालय के स्तर पर ही किया जाता है।

(7) इन परीक्षणों का निर्माण एवं प्रशासन आसान होता है।

(8) निर्माण व प्रशासन में सरलता व मितव्ययिता के कारण इस तरह के परीक्षणों का प्रयोग अध्यापक द्वारा व्यापक पैमाने पर किया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. इकाई परीक्षण का निर्माण किसके द्वारा किया जाता है।

....
....
....

2. इकाई परीक्षण का निर्माण कार्य सरल क्यों है?

....
....
....

3. इकाई परीक्षण की कोई दो विशेषताएं बताइए।

....
....
....

12.4 विशिष्टीकरण तालिका (ब्लूप्रिंट)

परीक्षण निर्माण के समय निर्माणकर्ता परीक्षण निर्माण के प्रथम चरण में सर्वप्रथम विशिष्टीकरण तालिका अथवा ब्लूप्रिंट का निर्माण करता है। ब्लूप्रिंट तालिका हमें संपूर्ण पाठ्यक्रम से प्रश्नों या पदों का चयन करने में सुविधा प्रदान करती है। इससे संपूर्ण विषय सामग्री का उपयुक्त प्रतिनिधित्व हो जाता है। विशिष्टीकरण तालिका के निर्माण से विभिन्न प्रकार के शैक्षिक उद्देश्यों जैसे– ज्ञान, बोध, प्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण व मूल्यांकन के लिए प्रश्नों की संख्या निश्चित हो जाती है। वास्तव में ब्लूप्रिंट परीक्षण निर्माण योजना का एक महत्वपूर्ण अंग है। विभिन्न प्रकार के शैक्षिक उद्देश्यों पर प्रश्नों की संख्या निश्चित करते समय यह देखा जाता है कि शिक्षण कार्य करते समय अध्यापक ने कौन–कौन से शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित किए थे।

संक्षेप में विशिष्टीकरण तालिका की सहायता से परीक्षण के विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों का भारित (Weightage) मूल्य निर्धारित किया जाता है। अर्थात् यह निर्णय लिया जाता है कि किस उददेश्य पर कितना बल दिया जाए व किस प्रकार के प्रश्न कितनी संख्या में रखे जाएं।

इस प्रकार विशिष्टीकरण तालिका की सहायता से परीक्षण निर्माता प्रश्नों की कुल संख्या, प्रश्नों के प्रकार व शैक्षिक उद्देश्यों की दृष्टि से उनकी संख्या, अनुमानित कठिनाई स्तर आदि का निर्धारण करता है। परीक्षण निर्माणकर्ता द्वारा परीक्षण निर्माण के समय–परीक्षण विधि, प्रश्नों के प्रकार, छात्रों की आयुसीमा/कक्षा, पाठ्यवस्तु की प्रकृति आदि बातों को ध्यान में रखकर प्रश्नों का निर्माण करता है। इस कार्य में ब्लूप्रिंट उसकी सहायता करता है। ब्लूप्रिंट की सहायता से आवश्यकतानुसार परीक्षण में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है। उदाहरणस्वरूप कक्षा– 11 के छात्रों के लिए वाणिज्य विषय की उपलब्धि परीक्षण की रचना के लिए ब्लूप्रिंट तालिका निम्नवत है–

वाणिज्य के कक्षा– 11 के छात्रों के सम्प्राप्ति परीक्षण हेतु विशिष्टीकरण तालिका

क्रमांक	उद्देश्य/ प्रकरण	ज्ञान स्तर				बोध स्तर				प्रयोग स्तर				कुल प्रश्न			
		T/ F	MC	MT	Total	T/ F	MC	MT	Total	T/ F	MC	MT	Total	T/ F	MC	MT	Total
1	वस्तु विनिमय	-	3	2	5	-	3	2	5	2	4	2	8	5	5	8	18
2	मुद्रा का विकास	1	3	2	6	2	3	2	7	2	4	2	8	6	7	8	21
3	भारत में मुद्रमान	2	3	2	7	1	3	2	6	2	2	4	8	7	6	8	21
योग	-	3	9	6	18	3	9	6	18	6	10	8	24	18	18	24	60

(जहाँ T/F= सत्य/असत्य, MC= बहु विकल्पीय, MT= मिलान प्रकार हैं)

12.4.1 विशिष्टीकरण तालिका से लाभ

विशिष्टीकरण तालिका से निम्न लाभ हैं–

(1) इससे प्रश्नों की संख्या व कठिनाई स्तर का निश्चय हो जाता है।

(2) इसकी मदद से संपूर्ण पाठ्यचर्या से प्रश्नों की रचना में आसानी होती है। पाठ्यचर्या का कोई अंश छूटने नहीं पाता है।

(3) शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप प्रश्नावली में प्रश्नों की संख्या निर्धारित करने में मदद मिलती है।

(4) ब्लूप्रिंट की मदद से शैक्षिक उद्देश्यों पाठ्यचर्या व प्रश्नों के प्रकार में एक संतुनल बनता है।

(5) ब्लूप्रिंट की सहायता से प्रश्नावली की रूपरेखा तैयार कर ली जाती है, जिससे प्रश्नों के निर्माण में आसानी होती है।

12.4.2 विशिष्टीकरण तालिका के दोष

इसके दोष निम्न है–

(1) इस कार्य में समय का अपव्यय होता है।

(2) इसमें परीक्षण निर्माणकर्ता की स्वतंत्रता बाधित होती है।

(3) यह एक श्रमसाध्य कार्य है।

(4) इसके कारण अध्यापक पाठ्यक्रम के कुछ क्षेत्रों से चाहकर भी अधिक प्रश्नों का निर्माण नहीं कर पाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. विशिष्टीकरण तालिका के कोई दो लाभ बताएं।

....

....

....

5. विशिष्टीकरण तालिका का निर्माण कब किया जाता है?

....
....
....

12.5 प्रश्नपत्र का निर्माण

अध्यापक एवं विशेषज्ञों द्वारा छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन करने के लिए समय–समय पर अनेक प्रकार के संप्राप्ति परीक्षणों का निर्माण किया जाता है। निर्माण प्रक्रिया के आधार पर परीक्षणों को दो भागों में बांटा जाता है– (1) अप्रमापीकृत परीक्षण (2) प्रमापीकृत परीक्षण। अप्रमापीकृत परीक्षण को अध्यापक निर्मित परीक्षण भी कहा जाता है। इसका निर्माण अध्यापक द्वारा अपनी आवश्यकतानुसार समय–समय पर किया जाता है इस विधि द्वारा जरूरत के अनुसार अध्यापक तुरंत कुछ प्रश्नों की रचना करके उसे प्रश्नावली का रूप दे देता है और उनका प्रशासन छात्रों पर करके उनकी उपलब्धि के स्तर का मापन कर लेता है। इससे उसकी जरूरत की पूर्ति हो जाती है। इस तरह देखा जाए तो अध्यापक निर्मित परीक्षण तत्कालीन आवश्यकता की पूर्ति तो करते हैं परंतु इनकी विश्वसनीयता तथा वैधता संदिग्ध रहती है। यह परीक्षण प्रमापीकृत नहीं होते हैं। इसका कारण है कि अध्यापक द्वारा अप्रमापीकृत परीक्षण का निर्माण कार्य करते समय किसी औपचारिक प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है। फिर भी कोई भी अध्यापक अच्छी तरह से विचार–विमर्श करके प्रश्नपत्र की रचना करता है तो ऐसे प्रश्नपत्र काफी उपयोगी सिद्ध होते हैं। इसके विपरीत प्रमापीकृत परीक्षणों (प्रश्न पत्र) का निर्माता प्रश्नावली का निर्माण करते समय औपचारिक ढंग से परीक्षण निर्माण की योजना बनाता है, प्रश्नों की रचना करता हैं, प्रश्नों का चयन करता है, प्रश्न पत्र की विश्वसनीयता, वैधता व मानकों की गणना करता है। यही कारण है कि प्रमापीकृत प्रश्नावली छात्रों की योग्यता का मापन विश्वसनीय व वैध ढंग से करते हैं। इसके साथ साथ प्रमापीकृत परीक्षणों की एक विशेषता यह भी है कि ये परीक्षण प्राप्तांक की व्याख्या किसी बड़े समूह के सन्दर्भ करने का आधार उपलब्ध कराती है। प्रमापीकृत उपलब्धि परीक्षणों (प्रश्न पत्र) के निर्माण की प्रक्रिया काफी जटिल है। इसको निर्माण के कई चरणों से गुजरना पड़ता है। प्रमापीकृत प्रश्नपत्र के निर्माण की प्रक्रिया को चार सोपानों में बाँटा जा सकता है। जो इस प्रकार है –

(1) परीक्षण की योजना बनाना

(2) परीक्षण हेतु प्रश्नों की रचना करना

(3) प्रश्नों का चयन करना

(4) परीक्षण का मूल्यांकन करना

12.5.1 प्रश्न पत्र (परीक्षण) निर्माण की योजना बनाना

प्रश्न पत्र निर्माण का प्रथम सोपान योजना बनाना है। इस सोपान के अंतर्गत परीक्षण से सम्बन्धित अनेक निर्णय लिए जाते हैं। प्रश्नपत्र निर्माण की विषयवस्तु, शिक्षण उद्देश्य, प्रश्नों के प्रकार, प्रश्नों की संख्या समयावधि, अंकन विधि, परीक्षण का प्रारूप जैसी विभिन्न बातों का निर्धारण किया जाता है। प्रश्नों के प्रकार तथा प्रश्नों की संख्या निश्चित करने के उपरांत परीक्षण (प्रश्न पत्र) का ब्लू प्रिंट तैयार किया जाता है। विशिष्टीकरण तालिका (ब्लूप्रिंट) में विषयवस्तु के विभिन्न प्रकारों तथा शिक्षण उद्देश्यों को दिए जाने वाले भार को स्पष्ट किया जाता है। इसके अतिरिक्त परीक्षा का माध्यम क्या होगा? जैसे–हिंदी या अंग्रेजी अथवा कोई और क्षेत्रीय भाषा, उसकी प्रशासन विधि, आयु, वर्ग, योग्यता, अनुभव आदि पर भी विचार किया जाता है। अंकन विधि का निर्धारण भी प्रथम सोपान का अत्यंत आवश्यक अंग है। स्पष्ट है कि प्रश्न पत्र निर्माण का यह सोपान वास्तव में परीक्षण से सम्बन्धित निर्णय लेने का सोपान है।

12.5.2 प्रश्न पत्र (परीक्षण) हेतु प्रश्नों की रचना करना

प्रश्नपत्र निर्माण का दूसरा चरण प्रश्नों की रचना करने का है। इस सोपान में प्रथम सोपान के अंतर्गत लिए गए निर्णयों को अंतिम रूप दिया जाता है। दूसरे शब्दों में विशिष्टीकरण सारणी का अनुसरण करके प्रश्नों की रचना की जाती है। प्रश्नों को हल करने के लिए निर्देश तैयार किए जाते हैं। यहां इस बात का ध्यान रखा

जाता है कि प्रश्नों तथा निर्देशों में प्रयुक्त भाषा व संकेत आदि छात्रों के स्तर के अनुरूप हो। सामान्यतः जितने प्रश्न अंतिम रूप से परीक्षण में रखने होते हैं। उससे दुगने प्रश्नों की रचना की जाती है। परीक्षण निर्माण के इस अत्यंत महत्पूर्ण सोपान में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों की रचना करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) प्रश्नों के निर्माण के समय द्विअर्थी शब्दों या वाक्यों प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(2) क्लिष्ट शब्द या बहुअर्थी शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए।

(3) प्रश्नों के सम्बन्ध में दिए गए निर्देश स्पष्ट होने चाहिए।

(4) सही उत्तरों के लिए किसी निश्चित उत्तर क्रम से बचना चाहिए।

(5) प्रश्नों की रचना करते समय पाठ्य पुस्तकों के वाक्यों को यथावत नहीं दोहराना चाहिए।

(6) प्रत्येक प्रश्न किसी विशेष उद्देश्य पर केंद्रित होना चाहिए।

(7) प्रश्नों की रचना करते समय कठिनाई स्तर व विभेदन क्षमता का भी ध्यान रखना चाहिए।

(8) प्रश्नों का केवल एक ही उत्तर सही होना चाहिए।

(9) प्रश्न में दोहरी नकारात्मक नहीं होनी चाहिए।

(10) प्रश्नों का निर्माण विषय वस्तु की सीमाओं के अंतर्गत ही करना चाहिए।

12.5.3 प्रश्न पत्र हेतु प्रश्नों का चयन करना

परीक्षण निर्माण के द्वितीय सोपान के अंतर्गत बनाए गए सभी प्रश्न उपयुक्त हो, यह जरूरी नहीं। इसलिए परीक्षण निर्माण के तृतीय सोपान के अन्तर्गत प्रश्नों की विस्तृत जांच की जाती है। प्रश्नों में आवश्यक सुधार किया जाता है तथा केवल उपयुक्त प्रश्नों का ही चयन किया जाता है। इसलिए इस सोपान को जांच स्तर भी कहा जाता है। परीक्षण की जांच के दो स्तर– प्राथमिक जांच स्तर तथा वास्तविक जांच स्तर हैं। प्राथमिक जांच स्तर में भाषा सम्बन्धी त्रुटियों व भ्रान्तियों को दूर किया जाता है। इसके लिए परीक्षण की कुछ प्रतियां तैयार कर ली जाती है तथा व्यक्तिगत रूप से कुछ छात्रों पर प्रशासित किया जाता है। छात्रों के द्वारा इंगित की गई कठिनाइयों या अस्पष्टताओं के आधार पर कुछ प्रश्नों को परीक्षण से निकाल दिया जाता है, कुछ में संशोधन किया जाता है तथा शेष को यथावत रखा जाता है। इस कार्य में विशेषज्ञों से भी परीक्षण के ऊपर उनके विचार और सुझाव आमंत्रित किए जाते हैं जिससे परीक्षण में सुधार किया जा सके। वास्तविक जांच स्तर के अंतर्गत परीक्षण के विभिन्न पदों की तकनीकी विशेषताओं को ज्ञात किया जाता है। इन तकनीकी विशेषताओं के आधार पर प्रश्नों को चयनित किया जाता है, संशोधित किया जाता है या अस्वीकार कर दिया जाता है।

प्रश्नों की तकनीकी विशेषताओं को ज्ञात करने के लिए पद विश्लेषण नामक प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। पद विश्लेषण में प्रश्नों की दो तकनीकी विशेषताएं यथा–कठिनाई स्तर व विभेदन क्षमता की गणना की जाती है। किसी प्रश्न के कठिनाई स्तर से तात्पर्य छात्रों की दृष्टि में प्रश्नों की कठिनता से है। अनुपात के रूप में प्राप्त कठिनाई स्तर की स्थिति में 0.50 का कठिनाई स्तर अच्छा माना जाता है। विभेदन क्षमता को पद वैधता भी कहते है। पद वैधता बतलाती है कि कोई प्रश्न परीक्षण पर प्राप्त कुल प्राप्तांक के अनुरूप किस सीमा तक मापन कर रहा अथवा किस सीमा तक अच्छे व कमजोर छात्रों में विभेद कर रहा है। पद विश्लेषण करने के लिए सबसे पहले परीक्षण को छात्रों के एक बड़े प्रतिदर्श पर प्रशासित किया जाता है। विभिन्न प्रश्नों पर छात्रों के द्वारा दिए गए उत्तरों को प्रत्येक प्रश्न के संदर्भ में सांख्यिकी विधियों से विश्लेषित करके कठिनाई स्तर व विभेदन क्षमता की गणना की जाती है। कठिनाई स्तर का मान प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है, जबकि विभेदन क्षमता का मान दशमलव अंक के रूप में लिखा जाता है। किसी प्रश्न के लिए कठिनाई स्तर जितना अधिक होता है, प्रश्न उतना ही कठिन होता है किसी प्रश्न के लिए विभेदन क्षमता का मान जितना अधिक होता है, प्रश्न उतने ही अच्छे ढंग से श्रेष्ठ व कमजोर छात्रों में भद कर रहा होता है। प्रश्नों के कठिनाई स्तर व विभेदन क्षमता में सीधा सम्बन्ध होता है। 50% कठिनाई स्तर वाला प्रश्न ही सर्वाधिक विभेदक हो सकता है। इससे सरल या कठिन प्रश्नों की विभेदन क्षमता कम होती है। इसलिए औसत कठिनाई स्तर अर्थात 50% कठिनाई स्तर वाले प्रश्न अधिक अच्छे माने जाते हैं। लेकिन प्रश्नावली में 40% से 60% कठिनाई स्तर वाले

प्रश्नों को रखा जाता है इसी तरह 0.5 या अधिक की विभेदन क्षमता अच्छी मानी जाती है। परंतु 0.3 या इससे अधिक विभेदन क्षमता वाले प्रश्नों को भी आवश्यकतानुसार परीक्षण में सम्मिलित किया जाता है।

पद विश्लेषण से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर प्रश्नों में सुधार भी किया जाता है। अत्याधिक सरल अथवा कठिन प्रश्नों को हटा दिया जाता है। इसी तरह निम्न विभेदन क्षमता वाले प्रश्नों को भी परीक्षण से हटा देते हैं। इस तरह अंत में परीक्षण निर्माता प्रश्न पत्र में औसत कठिनाई स्तर व उच्च तथा मध्यम उच्च विभेदन क्षमता वाले प्रश्नों को अंतिम रूप से रखता है। अतः कहा जा सकता है कि प्रश्न चयन तथा प्रश्न सुधार में पद विश्लेषण के आंकड़ों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है।

12.5.4 परीक्षण का मूल्यांकन करना

यह प्रश्न पत्र निर्माण का चतुर्थ एवं अन्तिम सोपान है। इस स्तर पर परीक्षण का मूल्यांकन करते हुए पद विश्लेषण के आधार पर अंतिम रूप से चयनित प्रश्नों को परीक्षण के रूप में व्यवस्थित कर लिया जाता है। इस प्रकार से परीक्षण का अंतिम प्रारूप तैयार हो जाता है। इस परीक्षण कि तकनीकी विशेषताओं जैसे– विश्वसनीयता, वैधता तथा मानकों को सुनिश्चित किया जाता है। सामान्यतः 0.80 से अधिक विश्वसनीयता गुणांक वाले परीक्षण को एक अच्छे परीक्षण के रूप में स्वीकार किया जाता है। परीक्षण के उद्देश्य के आधार पर प्रश्न पत्र की वैधता भी सुनिश्चित की जाती है। उपलब्धि परीक्षण के लिए सामान्यतः पाठ्यवस्तु वैधता को स्थापित करते हैं। परीक्षण पर प्राप्त अंकों की व्याख्या के लिए मानक भी तैयार किए जाते हैं। परीक्षण निर्माता का अंतिम कार्य परीक्षण निर्देशिका को तैयार करना होता है। परीक्षण निर्देशिका में परीक्षण के निर्माण व प्रशासन से सम्बन्धित जानकारी रहती है। उदाहरणस्वरूप– परीक्षण के उद्देश्य, मापी जाने वाली योग्यता की कार्यकारी परिभाषा, विशिष्टीकरण तालिका, पद विश्लेषण के आंकड़े, प्रसारित करने व अंकन करने की विधि, विश्वसनीयता, वैधता तथा मानक आदि का वर्णन परीक्षण निर्देशिका में दिया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

6. प्रमापीकृत परीक्षण के सोपानों के नाम बताइए।

....
....
....

7. एक अच्छे प्रश्न का कठिनाई स्तर कितना होता है?

....
....
....

12.6 सारांश

छात्रों की सीखने में प्रगति की जांच हेतु अनेक प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। जिनके आधार पर छात्रों की उपलब्धि का मापन एवं मूल्यांकन किया जाता है। जब अध्यापक अपने शिक्षण की प्रभावशीलता एवं छात्रों की उपलब्धि स्तर की जांच हेतु प्रश्न पत्र का निर्माण करता है तो उसे अध्यापक निर्मित परीक्षण या अप्रमापीकृत परीक्षण कहते हैं। ऐसे परीक्षणों को प्रमापीकृत नहीं किया जाता किंतु सरल व सुविधाजनक होने के कारण अध्यापकों द्वारा इनका बहुतायत से निर्माण व प्रयोग किया जाता है। इसके विपरीत

प्रमापीकृत परीक्षण के निर्माण हेतु एक निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाता है जो चार सोपान से होकर गुजरती है। इसका निर्माण विशेषज्ञ द्वारा किया जाता है। इसके निर्माण में प्रथम सोपान पर विशिष्टीकरण तालिका बनाई जाती है। द्वितीय सोपान में विशिष्टीकरण तालिका के आधार पर प्रश्नों का निर्माण किया जाता है। तृतीय सोपान के अंतर्गत प्रश्नों की जांच की जाती है तथा पद विश्लेषण के आधार पर प्रश्नों के कठिनाई स्तर व विभेदन क्षमता का पता लगाकर उनको स्वीकृत, अस्वीकृत अथवा उनमें सुधार किया जाता है। प्रश्न पत्र निर्माण के अंतिम चरण में पद विश्लेषण के पश्चात् चयनित प्रश्नों को व्यवस्थित रूप दिया जाता है। परीक्षण की विश्वसनीयता, वैधता व मानकों का निर्धारण किया जाता है। अन्त में परीक्षण के निर्माण, प्रशासन व मूल्यांकन से सम्बन्धित निर्देश पुस्तिका तैयार की जाती है। इस तरह से अंतिम रूप से प्रमापीकृत परीक्षण का निर्माण कार्य संपन्न होता है।

12.7 अभ्यास के प्रश्न

1. प्रमापीकृत परीक्षण का निर्माण कीजिए।
2. ब्लूप्रिन्ट से क्या लाभ है?

12.8 चर्चा के बिंदु

1. प्रमापीकरण की विधि पर चर्चा कीजिए।
2. इकाई परीक्षण की विशेषताओं पर चर्चा कीजिए।

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) इकाई परीक्षण का निर्माण अध्यापक द्वारा अपनी कक्षा के छात्रों की विषय में संप्राप्ति की जांच हेतु की जाती है।

(2) अध्यापक निर्मित परीक्षण का प्रमाणीकरण नहीं किया जाता है। इसलिए इसका निर्माण सरल है।

(3) इकाई परीक्षण की दो विशेषताएं हैं–

   (i). इसका निर्माण व प्रशासन सरल है।
   (ii). इस परीक्षण द्वारा अध्यापक को उसके शिक्षण कौशल की प्रभावशीलता का पता चलता है।

(4) विशिष्टीकरण तालिका के दो लाभ–

   (i). इससे प्रश्नों की संख्या, कठिनाई स्तर, प्रश्नों के प्रकार, शैक्षिक स्तर आदि का निश्चय हो जाता है।
   (ii). इसकी मदद से संपूर्ण पाठ्यक्रम से प्रश्नों की रचना में आसानी होती है।

(5) विशिष्टीकरण तालिका का निर्माण प्रश्न पत्र निर्माण के प्रथम चरण में किया जाता है।

(6) चार सोपान के नाम है–

   (i). परीक्षण निर्माण की योजना बनाना
   (ii). परीक्षण हेतु प्रश्नों की रचना करना
   (iii). प्रश्नों का चयन करना
   (iv). परीक्षण का मूल्यांकन करना

(7) 50% कठिनाई स्तर होता है।

12.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) पाठक, पी० डी० एवं त्यागी, जी० एस० डी० (1994), 'सफल शिक्षण कला', विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

(2) शर्मा, आर० ए० (2001), 'शिक्षण तकनीकी', सूर्या पब्लिकेशन मेरठ।

(3) गुप्ता, एस० पी० एंव गुप्ता, अलका (2001), 'आधुनिक मापन एंव मूल्यांकन', शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

(4) त्रिपाठी, शालिग्राम (1996), 'शिक्षण पद्धति', राधा पॅब्लिकेसन नई दिल्ली– 110002।

(5) त्यागी, गुरसरनदास (2012), 'वाणिज्य शिक्षण' अग्रवाल पॅब्लिकेसन, आगरा।

खण्ड 05 : वाणिज्य में अधिगम संसाधन

खंड परिचय

सीखना जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। अपने व्यापक स्वरूप में शिक्षा की प्रक्रिया व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती रहती है। अपने स्वरूप के आधार पर शिक्षा के तीन रूप होते हैं– औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा तथा निरौपचारिक शिक्षा। वह शिक्षा जो विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में चलती है औपचारिक शिक्षा कहलाती है। वह शिक्षा जिसकी कोई योजना नहीं बनाई जाती, जिसके न उद्देश्य निश्चित होने होते हैं, ना पाठ्यचर्या और ना शिक्षण विधियां, आकस्मिक रूप से सदैव चलती रहती हैं उसे अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं। कुछ विद्वान इसे औपचारिकेत्तर शिक्षा के नाम से भी पुकारते हैं। निरौपचारिक शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचार्य और शिक्षण विधियां प्रायः निश्चित होते हैं परंतु औपचारिक शिक्षा की भांति कठोर नहीं होते। वस्तुतः शिक्षा के तीनों रूपों में औपचारिक रूप और निरौपचारिक रूप से सीखने और सिखाने की प्रक्रिया हेतु सीखने के संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। जिसके माध्यम से शिक्षा की प्रक्रिया सुचारू रूप से चलती है। वाणिज्य में सीखने के संसाधन विद्यालय, कक्षा–कक्ष, पाठ्यपुस्तक, पत्र–पत्रिकाएं, पुस्तकालय, रेडियो, टी०वी०, टेप रिकॉर्डर, सी०डी०, डी०वी०डी०, प्रोजेक्टर, इत्यादि हैं। इन सभी का हम निम्नवत इकाइयों में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

इकाई–13 : इस इकाई के अंतर्गत हम सीखने के संसाधन का अर्थ, प्रकार, संसाधनों का निर्माण व उपयोगिता का अध्ययन करेंगे।

इकाई–14 : इस इकाई के अंतर्गत हम वाणिज्य के अध्ययन हेतु पाठ्य पुस्तकों, पत्रिकाओं, हस्त पुस्तिका, छात्र कार्य पुस्तिका के चयन, उपयोगिता और महत्व पर चर्चा करेंगे।

इकाई–15 : इस इकाई के अंतर्गत हम वाणिज्य शास्त्र के शिक्षण में वाणिज्य प्रयोगशाला, वाणिज्य विषय के अध्ययन हेतु कक्षा–कक्षा तथा वाणिज्य कक्षा के बाहर संसाधन एव शैक्षिक पर्यटन के महत्व व उपयोगिता पर चर्चा करेंगे।

B.Ed.E.-43/117

इकाई 13 : अधिगम संसाधन का अर्थ, प्रकार, निर्माण एवं उनका उपयोग

इकाई की संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 इकाई के उद्देश्य

13.3 सीखने के संसाधनों से आशय

13.4 सीखने के संसाधनों के प्रकार

13.4.1 प्रशासन की दृष्टि से शैक्षिक संसाधनों के प्रकार

13.4.2 शैक्षिक तकनीकि के आधार पर संसाधनों के प्रकार

13.4.3 दृश्य श्रव्य सामग्री के आधार पर संसाधनों के प्रकार

13.4.4 समयावधि के आधार पर संसाधनों के प्रकार

13.5 सीखने के संसाधनों का निर्माण एवं प्रयोग

13.6 सारांश

13.7 अभ्यास के प्रश्न

13.8 चर्चा के बिंदु

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

प्रत्येक जागरूक समाज अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए शिक्षा का समुचित प्रबंध करता है। वह शिक्षा के माध्यम से अब तक अर्जित ज्ञान, संस्कार, संस्कृति, सभ्यता, वैज्ञानिक ज्ञान इत्यादि का हस्तांतरण अपनी आने वाली पीढ़ी को करता है ताकि उसके समाज की निरंतर प्रगति होती रहे। इस हेतु वह प्रायः शिक्षा की औपचारिक प्रक्रिया को अपनाता है। जिसके परिणाम स्वरूप विद्यालय, कॉलेज और विश्वविद्यालय जैसे शैक्षिक संस्थाओं का निर्माण करता है। पठन–पाठन की प्रक्रिया को सुचारू रूप से संपन्न करने हेतु वह पाठ्यक्रम, व उसके अनुरूप पाठ्य पुस्तकों, पुस्तकालय, पत्र–पत्रिकाओं, कक्षा–कक्ष, तकनीकी यंत्रों व अन्य संसाधनों का निर्माण करती है। इस इकाई में हम वाणिज्य शिक्षण हेतु आवश्यक संसाधनों के बारे में अध्ययन करेंगे।

13.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

(1) सीखने का अर्थ बता सकेंगे।

(2) सीखने के संसाधनों के बारे में बता सकेंगे।

(3) सीखने के संसाधनों के प्रकार के बारे में बता सकेंगे

(4) सीखने के संसाधनों के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

(5) सीखने के संसाधनों का उपयोग कर सकेंगे।

13.3 सीखने के संसाधनों से आशय

संसाधनों के अभाव में किसी उद्देश्य की प्राप्ति अत्यंत कठिन होता है। सीखने की क्रिया को सुचारू रूप से संपन्न करने हेतु भी संसाधनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः हम सीखने के संसाधनों की चर्चा से

पूर्व सीखने का अर्थ एवं संसाधन से अभिप्राय पर चर्चा करेंगे। जिससे सीखने के संसाधन को समझने में आसानी होगी।

1. सीखने का अर्थ–

सीखना या अधिगम एक सामान्य शब्द है जिसका आशय लगभग सभी लोग समझते हैं। परंतु मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सीखने का अभिप्राय जानना एक शिक्षक के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। सीखना या अधिगम की प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार है–

(1) गेट्स के शब्दों में "अनुभव तथा प्रशिक्षण के फलस्वरूप व्यवहार का उन्नयन अधिगम है।''

(2) स्कीनर के अनुसार ''अधिगम व्यवहार में उत्तरोतर अनुकूलन की एक प्रक्रिया है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण एवं व्याख्या से अधिगम की निम्नलिखित विशेषताएं पता चलती है–

(1) अधिगम परिणाम न होकर एक प्रक्रिया है ।

(2) अधिगम की प्रक्रिया सदैव उद्देश्यपूर्ण होती है जो व्यक्ति को समायोजन तथा अनुकूलन के लिए तैयार करती है।

(3) अधिगम का क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है। इसमें मानव व्यवहार के सभी क्षेत्र जैसे– ज्ञानात्मक, भावात्मक, एवं मनोचालक समाहित रहते हैं।

(4) अधिगम व्यवहार में परिवर्तन की प्रक्रिया है परंतु बीमारी, थकान, संवेगात्मक स्थिति, परिपक्वता, मादक द्रव्यों के सेवन आदि के कारण व्यवहार में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों को अधिगम में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

(5) अधिगम लगभग स्थायी प्रकार का व्यवहार परिवर्तन होता है।

(6) अधिगम सदैव नवीन नहीं होता अपितु यह पूर्व व्यवहार में परिमार्जन भी हो सकता है।

(7) अधिगम सकारात्मक एवं नकारात्मक में से कुछ भी हो सकता है।

(8) अधिगम की प्रक्रिया सार्वभौमिक व सतत होती है अर्थात सभी जीवधारी सीखते हैं। सीखना किसी आयु, लिंग, जाति विशेष तक सीमित नहीं होता ।

(9) अधिगम अभ्यास, प्रशिक्षण तथा अनुभव का परिणाम होता है ।

2. संसाधन का अर्थ–

हमारे पर्यावरण में उपलब्ध प्रत्येक वस्तु जो हमारी आवश्यकताओं को पूरा करने में प्रयुक्त की जा सकती हैं और जिसको बनाने के लिए प्रौद्योगिकी उपलब्ध है, जो आर्थिक रूप से संभावव्य और सांस्कृतिक रूप से मान्य हैं, एक 'संसाधन' है। हमारे पर्यावरण में उपलब्ध वस्तुओं की रूपांतरण प्रक्रिया प्रकृति, प्रौद्योगिकी और संस्थाओं के परस्पर अन्तर्सम्बन्ध में निर्भर है जिसे निम्नांकित चित्र द्वारा समझा जा सकता है–

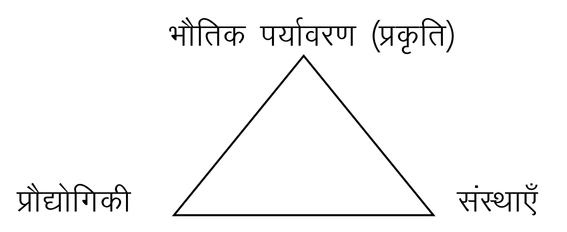

प्रकृति, प्रौद्योगिकी और संस्थाओं के मध्य अन्तसम्बन्ध

मानव प्रौद्योगिकी द्वारा प्रकृति के साथ क्रिया करता हैं और अपने आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए संस्थाओं का निर्माण करता है। यहां पर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि संसाधन प्रकृति का उपहार नहीं अपितु संसाधन मानवीय क्रियाओं का परिणाम है। मानव स्वयं एक संसाधन है। मनुष्य

प्रकृति द्वारा प्रदत वस्तुओं को प्रौद्योगिकी के माध्यम से उन्हें उपयोग में लाने लायक बनाता है जिसे हम संसाधन कहते हैं। जिनका प्रयोग मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करता है। संसाधन जिस प्रकार मनुष्य के जीवनयापन के लिए अति आवश्यक हैं, उसी प्रकार जीवन की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। प्रकृति प्रदत वे सभी पदार्थ जिसे मानव ने अपनी प्रौद्योगिकी व परिश्रम से संसाधनों में परिवर्तित कर उपयोग लायक बनाया है, ईश्वर द्वारा मानव को दिया गया अनमोल उपहार है।

अधिगम एवं संसाधन को जान लेने के पश्चात हमें शैक्षिक संसाधन का आशय समझने में आसानी हो जाएगी। अगर सीखना अभ्यास, अनुभव व प्रशिक्षण के फलस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन है तथा 'संसाधन' प्रकृति प्रदत वस्तुएं हैं जिनको मनुष्य अपने परिश्रम व प्रौद्योगिकी कुशलता के फलस्वरूप अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लायक बनाता है तो इस आधार पर कह सकते हैं कि ''शैक्षिक संसाधन शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को सुगम व बोधगम्य बनाने वाले साधन है।'' उदाहरणार्थ– कंप्यूटर, टी० वी०, डी० वी० डी०, रिकॉर्डर, रिकॉर्ड प्लेयर, प्रोजेक्टर, चित्र, मानचित्र, चार्ट, ग्राफ, मॉडल, सूचना पट्ट, सीखने की मशीन, पुस्तकालय, प्रयोगशाला इत्यादि। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सीखने प्रक्रिया में सहयोग करने वाले समस्त भौतिक सामग्री व प्रौद्योगिकी/तकनीकी यंत्र सीखने के संसाधन कहलाते हैं । यह सीखने व सिखाने वाले पर निर्भर करता है कि वह सीखने के संसाधनों को कब व कैसे उपयोग करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. सीखना क्या है ?

....
....
....

2. संसाधन किसे कहते हैं ?

....
....
....

13.4 सीखने के संसाधनों के प्रकार

सभ्यता के प्रारंभ से आज तक शिक्षण की विधा में बहुत परिवर्तन हो चुके हैं। अध्यापक शिक्षण विधि का चयन शैक्षिक उद्देश्यों के आधार पर करता है एवं उसी के अनुरूप शैक्षिक संसाधनों का प्रयोग करता है। प्रयोग एवं निर्माण की दृष्टि से शैक्षिक संसाधन निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

1. प्रशासन की दृष्टि से शैक्षिक संसाधनों के प्रकार
2. शैक्षिक तकनीकी के आधार पर संसाधनों के प्रकार
3. श्रव्य–दृश्य सामग्री के आधार पर शैक्षिक संसाधनों के प्रकार
4. समयावधि के आधार पर शैक्षिक संसाधनों के प्रकार

13.4.1 प्रशासन की दृष्टि से शैक्षिक संसाधनों के प्रकार

किसी भी शैक्षिक संस्थान में शिक्षण कार्य को संपन्न करने हेतु अध्यापक कर्मचारी व छात्रों के

साथ—साथ स्कूल भवन, खेल के मैदान, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, इत्यादि सामग्री आवश्यक हैं। शिक्षण में इन सभी का अपना—अपना महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्रशासन की दृष्टि से इनको दो प्रकार के संसाधनों में विभाजित किया जाता है—

(1) भौतिक संसाधन— इसके अंतर्गत स्कूल भवन, कक्षा—कक्ष, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल के मैदान, अध्ययन सामग्री, श्यामपट्ट, पुस्तकें इत्यादि आते हैं।

(2) मानवीय संसाधन— मानवीय संसाधनों के अंतर्गत प्राचार्य, अध्यापक, छात्र व कर्मचारी (लिपिक व चपरासी) आदि आते हैं।

13.4.2 शैक्षिक तकनीकी के आधार पर संसाधनों के प्रकार

शैक्षिक तकनीकी के आधार पर शैक्षिक संसाधनों को दो प्रकार में बांटा जा सकता है—

(1) **हार्डवेयर**— इसके अंतर्गत भौतिक पदार्थों को सम्मिलित किया जाता है। इसमें शिक्षण सहायक सामग्री भी सम्मिलित हैं। हार्डवेयर के अंतर्गत चाकबोर्ड, रेडियो, ओवरहेड प्रोजेक्टर, स्लाइड प्रोजेक्टर, टी०वी०, कंप्यूटर, केलकुलेटर, प्रिंटिंग मशीन, श्रव्य—दृश्य सामग्री व रिकॉर्डर इत्यादि आते हैं।

(2) **सॉफ्टवेयर**— इसमें भौतिक सामग्री के स्थान पर शिक्षण एवं अधिगम के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित लिखित सामग्री को शामिल किया जाता है। जैसे— रेडियो अथवा टी०वी० हार्डवेयर संसाधन है लेकिन उसमें प्रसारित हो रहे संदेश अथवा प्रोग्राम सॉफ्टवेयर संसाधन हैं। बहुत से विद्वान हार्डवेयर की तुलना में सॉफ्टवेयर को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इसके अंतर्गत चार्ट की सामग्री, ग्राफ, मानचित्र, पोस्टर, पुस्तकें, बुलेटिन बोर्ड की सूचना, आरेख तथा चित्र, रेडियो, प्रोग्राम, वीडियों प्रोग्राम, कंप्यूटर प्रोग्राम, रिकॉर्डेड सामग्री, स्लाइड्स, लिखित सामग्री इत्यादि आते हैं।

13.4.3 श्रव्य—दृश्य सामग्री के आधार पर शैक्षिक संसाधनों के प्रकार

श्रव्य—दृश्य सामग्री, मुद्रित अथवा लिखित शब्द के अतिरिक्त वे संसाधन हैं जो विषयवस्तु को स्पष्ट करने में सहायता प्रदान करते हैं। वस्तुतः श्रव्य—दृश्य संसाधन का तात्पर्य उस सामग्री से है जो कक्षा अथवा शैक्षिक परिस्थितियों में लिखित या बोली गई पाठ्य—सामग्री को समझने में सहायता करती है। श्रव्य—दृश्य संसाधन को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है।

(1) श्रव्य संसाधन

(2) दृश्य संसाधन

(3) श्रव्य—दृश्य संसाधन

श्रव्य—दृश्य संसाधन के विभाजन को निम्नांकित तालिका द्वारा समझा जा सकता है।

श्रव्य—दृश्य संसाधन

श्रव्य संसाधन	**दृश्य संसाधन**	**श्रव्य—दृश्य संसाधन**
1. रेडियो	1. मॉडल	1. चलचित्र / पिक्चर
2. टेप रिकॉर्डर	2. वास्तविक सामग्री / वस्तुएं	2. दूरदर्शन की सामग्री
	3. चित्र	3. ऑडियो—वीडियो सामग्री
	4. मानचित्र	4. नाटक / ड्रामा
	5. रेखा चित्र	
	6. ग्राफ	

7. चार्ट
8. बुलेटिन बोर्ड
9. फ्लेश कार्ड
10. पोस्टर
11. स्लाइड
12. छाया चित्र

13.4.4 समयावधि के आधार पर शैक्षिक संसाधनों के प्रकार

तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप शैक्षिक संसाधनों का निरंतर विकास होता जा रहा हैं। दिन–प्रतिदिन सीखने के लिए नवीन सामग्री को विकसित किया जा रहा है। इस दृष्टि से शैक्षिक संसाधनों को दो भागों में बांटा जा सकता है–

(1) परंपरागत संसाधन–

सीखने के परंपरागत संसाधनों में पाठ्य पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएं, पांडुलिपियाँ, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, पर्यटन आदि आते हैं। इन सबका प्रयोग परंपरागत रूप से प्राचीनकाल से ही सीखने हेतु होता आ रहा है।

(2) गैर परंपरागत संसाधन–

तकनीकी विकास के फलस्वरूप सीखने के लिए विकसित नवीन साधनों को गैर परंपरागत सामग्री के अंतर्गत रखा जाता है। इसमें इंटरनेट, ऑनलाइन कोर्स, ऑनलाइन स्टडी मैटेरियल्स, ऑनलाइन पुस्तकें, प्रोग्राम लर्निंग, डिजिटल क्लास एवं कंप्यूटर अनुदेशन, दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले शैक्षिक कार्यक्रम, सी०डी०, डी०वी०डी०, लर्निंग मशीन, रिकॉर्डेड सामग्री, चलचित्र, दृश्य–श्रव्य सामग्री इत्यादि आते हैं। इन संसाधनों का विकास तकनीकी विकास के फलस्वरूप हुआ है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

3. संसाधनों के प्रकार बताइए।

....
....
....

4. श्रव्य–दृश्य संसाधनों के नाम बताइए।

....
....
....

13.5 सीखने के संसाधनों का निर्माण एवं प्रयोग

वाणिज्य में शिक्षण एवं अधिगम हेतु बहुत से शैक्षिक संसाधनों का निर्माण एवं प्रयोग शिक्षक एवं छात्रों द्वारा किया जाता है। जो शिक्षक एवं छात्र दोनों के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। इससे शिक्षक एवं छात्रों को शिक्षण एवं अधिगम में मदद मिलती है। वाणिज्य के अध्ययन–अध्यापन हेतु अत्यंत उपयोगी संसाधन निम्नवत हैं–

(1) श्यामपट्ट या बोर्ड–

यह सबसे महत्वपूर्ण शैक्षिक संसाधन है। आज भी भारतीय शिक्षा केंद्रों में बिना श्यामपट्ट के अध्ययन अध्यापन की कल्पना नहीं की जा सकती है। परंतु श्यामपट्ट का निर्माण व रखरखाव तथा उसका उपयोग भी महत्वपूर्ण है। आजकल शिक्षा केंद्रों में श्यामपट्ट के साथ–साथ ग्रीनपट्ट, ह्वाईटबोर्ड व डिजिटल बोर्ड का प्रयोग हो रहा है। श्यामपट्ट का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) श्यामपट्ट को डस्टर या कपड़े से साफ करें उसको हाथ से साफ नहीं करना चाहिए।

(2) श्यामपट्ट के ऊपर बाएं तरफ से लिखना प्रारंभ करना चाहिए इसके साथ ही लिखते समय पंक्ति सीधी रखनी चाहिए।

(3) श्यामपट्ट पर केवल महत्वपूर्ण बातें ही लिखें।

(4) श्यामपट्ट पर बड़े अक्षरों में साफ–साफ लिखें। जिससे पीछे बैठे हुए छात्र भी आसानी से देख व पढ़ सकें।

(5) श्यामपट्ट पर नक्शा या रेखाचित्र बना लेने के बाद छात्रों का ध्यान केंद्रित करने के लिए संकेतक का प्रयोग अवश्य करें।

(6) शिक्षक को श्यामपट्ट के एक तरफ ही खड़ा होना चाहिए।

(2) बुलेटिन बोर्ड / सूचना पट्ट–

दृश्य साधन के रूप में सूचना पट्ट का शिक्षा के क्षेत्र में बहुत महत्व है। दुर्भाग्य से हमारे देश के अधिकांश शिक्षा केंद्रों में या तो सूचना पट्ट नहीं है अथवा है भी तो जीर्णशीर्ण हालत में है जिसका उपयोग नहीं होता। वाणिज्य का शिक्षक इसका उपयोग सूचनाओं को अंकित करने, वाणिज्य के पुस्तकों के शीर्षक को प्रदर्शित करने के लिए, योजना, इकाई तथा समस्याओं की रूपरेखा को प्रदर्शित करने, चित्र, तालिकाएँ, विज्ञापन आदि के प्रदर्शन हेतु करता है।

(3) चित्र–

वाणिज्य शिक्षण में चित्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। चित्रों की सहायता से शिक्षक विषयवस्तु को वास्तविक स्वरूप देने का प्रयास करता है। शिक्षक इनका उपयोग बालकों को वास्तविकता का ज्ञान प्रदान करने, रूचि को जागृत करने, कल्पना शक्ति को उत्तेजित करने तथा ग्राह्य शक्ति को तीव्र बनाने के लिए करता है। शिक्षक इनका निर्माण विषयवस्तु और उद्देश्य को ध्यान में रखकर करता है। चित्र का निर्माण करते समय निम्नलिखित सावधानियां रखनी चाहिए–

(1) चित्र कक्षा के आकार के अनुपात में बनाए जाएँ।

(2) चित्र में शुद्धता, सजीवता एंव स्पष्टता का होना आवश्यक है।

(3) चित्र विषयवस्तु से सम्बन्धित होना चाहिए।

(4) चित्र का प्रयोग उपयुक्त स्थान तथा समय पर करना चाहिए।

(4) मानचित्र–

वाणिज्य के शिक्षण में मानचित्र की उपयोगिता बहुत महत्वपूर्ण होती है। व्यापारिक मार्ग, व्यापार केंद्र, प्रमुख उत्पादन केंद्र इत्यादि को मानचित्र के माध्यम से अच्छे से प्रस्तुत किया जा सकता है। वाणिज्य के शिक्षक को मानचित्र के निर्माण एवं प्रयोग के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) मानचित्र का निर्माण करते समय उसकी शुद्धता, विश्वसनीयता एंव वैधता की जांच कर लेनी चाहिए।

(2) मानचित्र का पैमाना निश्चित होना अनिवार्य है।

(3) मानचित्र में दूरी को स्पष्ट करने में सतर्कता बरतनी चाहिए।

(4) शिक्षक को मानचित्र के निर्माण की प्रक्रिया का ज्ञान होना चाहिए, जिससे वह छात्रों को मानचित्र निर्माण में सहायता कर सकें।

(5) मानचित्र का प्रयोग करते समय शिक्षक को उन्हीं अंगों पर ध्यान देना चाहिए जो कि पाठ्यवस्तु से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हैं।

(5) **ग्राफ या लेखा चित्र**– लेखा चित्र वह साधन है जिसके द्वारा संख्यात्मक गणना को दृश्यात्मक बनाकर छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, जो शब्द या मानचित्र द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती। वाणिज्य शिक्षण में इस उपकरण का प्रयोग बहुत ही लाभप्रद है। इसके प्रयोग से विषय की दुर्बोधता को दूर किया जा सकता है। उदाहरणार्थ भारत के गत 10 वर्ष के चाय के उत्पादन को हम ग्राफ में चिन्हित कर उसे छात्रों को सरलता पूर्वक समझा सकते हैं। इसके प्रयोग से तुलनात्मक अध्ययन करने में बहुत सहायता मिलती है। इसका निर्माण करते समय सांख्यिकी विधियों का पालन करना चाहिए। ग्राफ के माध्यम से औद्योगिक प्रगति, आयात–निर्यात, जनसंख्या घनत्व, जनसंख्या वृद्धि दर आदि को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। शिक्षक एवं छात्रों को ग्राफ बनाते समय सावधानी बरतनी चाहिए ताकि कोई त्रुटि ना हो सके।

(6) **रेखाचित्र**– वाणिज्य शिक्षण में रेखचित्र का उपयोग पर्याप्त मात्रा में किया जाता है। वाणिज्य शिक्षण में इनका प्रयोग महत्वपूर्ण है। इनका निर्माण सावधानीपूर्वक विषय को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। मितव्ययिता रेखाचित्र का महत्वपूर्ण गुण है।

(7) **चार्ट**– वाणिज्य शिक्षण में चार्ट का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी सहायता से संख्यात्मक तथ्यों को सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है। यह विभिन्न पहलुओं के सम्बन्धों को स्पष्ट करने में सहायक है। शिक्षक को विषयवस्तु को ध्यान में रखकर चार्ट का निर्माण करना चाहिए।

(8) **पत्र–पत्रिकाएं**– वाणिज्य के अध्ययन अध्यापन में पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, मैगजीन इत्यादि का बहुत महत्व है। छात्रों को बाजार की स्थिति, स्टॉक एक्सचेंज आदि का ज्ञान समाचार–पत्रों एवं व्यापारिक पत्रिकाओं की सहायता से सरलता से कराया जा सकता है। इनकी सहायता से देश के आर्थिक विकास व व्यापारिक समस्याओं का ज्ञान प्राप्त होता है। सरकार की आर्थिक व व्यापारिक नीतियों के बारे में पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से बहुत उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है।

(9) **ओवरहेड प्रोजेक्टर**– आजकल इस प्रोजेक्टर का प्रयोग कक्षा शिक्षण में बहुतायत से किया जाता है। इस प्रोजेक्टर पर कार्य करते समय शिक्षक छात्रों के सम्मुख बना रहता है जो अन्य प्रोजेक्टरों से सम्भव नहीं है। इसके लिए उपयोग में लाई जाने वाली पारदर्शी स्लाइड का निर्माण शिक्षक स्वयं करता है। स्थायी मार्कर की सहायता से शिक्षक पारदर्शी स्लाइड पर मानचित्र, चित्र, रेखाचित्र, ग्राफ, सारांश इत्यादि तैयार करके उन्हें ओवरहेड प्रोजेक्टर की सहायता से छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

(10) **वास्तविक या प्रत्यक्ष वस्तुएँ**– वाणिज्य शास्त्र में कुछ मूल वस्तुओं के प्रदर्शन की आवश्यकता होती है जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं–

(1) जर्नल

(2) लेजर

(3) कैश बुक

(4) समय और श्रम बचाने वाले यंत्र जैसे–पचिंग मशीन, टाइम रिकॉर्डर, संख्या डालने वाली मशीन, बुक–कीपिंग मशीन, फोटोस्टेट मशीन, कंप्यूटर, टाइपराइटर आदि।

(5) चेक, विनिमय–पत्र, हुण्डी आदि।

इसके अतिरिक्त नमूना प्रपत्र, ग्लोब, रेडियो, टेलीविजन, रिकॉर्ड प्लेयर आदि महत्वपूर्ण संसाधन है जिनका प्रयोग वाणिज्य शिक्षण में प्रमुखता से होता है। छात्रों को मूल वस्तुएँ प्रस्तुत करना अधिक उपयुक्त होता है। नई वस्तुओं का ज्ञान प्रदान करने के लिए कक्षा में यथासंभव उनको प्रत्यक्ष रूप से दिखाना चाहिए। वाणिज्य शास्त्र के छात्रों को पुस्तपालन की कक्षा में जनरल, लेजर, रोकड़, चेक आदि

दिखाकर उनका प्रयोग समझाना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. प्रमुख शैक्षिक संसाधनों के नाम बताइए।

....

....

....

6. मानवीय संसाधनों पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

7. श्यामपट्ट कार्य करते समय कौन–कौन सी सावधानी बरतनी चाहिए।

....

....

....

13.4 सारांश

प्रयोजनवाद एवं यथार्थवादी दर्शन के बढ़ते प्रभाव के फलस्वरूप नई क्रांति उत्पन्न हुई। इसके प्रभाव के कारण शिक्षा मे प्रयोग एवं प्रदर्शन विधियों का उपयोग बढ़ा। इससे कक्षा न सिर्फ जीवंत हो गई अपितु नवीन ऊर्जा के साथ सहभागिता भी बढ़ी। इससे कक्षा में दृश्य–श्रव्य साधनों का प्रयोग शिक्षण सहायक सामग्री के रूप में बढ़ा है। श्रव्य–दृश्य शिक्षण सामग्री के प्रयोग से कक्षा शिक्षण न सिर्फ रोचक हुआ अपितु छात्रों को विषयवस्तु को समझने मे भी सरलता हुई है। इससे छात्र को विषय को याद करना भी आसान हुआ है। यह सर्वविदित तथ्य है कि जिस विषय को सीखने में एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग होता है वह विषय शीघ्र याद होती हैं। इसके साथ ही उसकी स्मृति भी अपेक्षाकृत स्थायी होती है। यही कारण है कि कक्षाकक्ष में श्रव्य–दृश्य शिक्षण सहायक सामग्रियों का प्रयोग बढ्ने से छात्रां के ध्यान, धारणा और अधिगम तीनों में वृद्धि हुई। इससे कक्षा का वातावरण अच्छा हुआ है। इसका एक परिणाम यह भी है कि शिक्षण सहायक सामग्रियों के पर्याप्त मात्रा और उपयुक्त तरीके से प्रयोग करने से कक्षानुशासन में भी आशातीत सफलता मिली है। ऐसे मे कहा जा सकता है कि शिक्षा के संसाधन शिक्षण एवं अधिगम दोनों हेतु बहुविध लाभकारी हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को सरल, बोधगम्य व समृद्ध बनाने में शैक्षिक संसाधनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनकी मदद से विषय का प्रस्तुतीकरण आसान हो जाता है साथ ही छात्रों में विषय के प्रति समझ, उत्सुकता, बोधगम्यता, रूचि आदि का विकास होता है। वाणिज्य के शिक्षण हेतु आज कंप्यूटर, प्रिंटर, प्रोजेक्टर, चार्ट, पत्र पत्रिकाएं, ग्राफ, रेखाचित्र, मानचित्र इत्यादि अनिवार्य संसाधन बन गए हैं जिनका वाणिज्य शिक्षण को सरल एवं बोधगम्य बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका है।

13.5 अभ्यास के प्रश्न

(1) संसाधन किसे कहते हैं? समझाइए।

(2) सीखने को परिभाषित कीजिए।

(3) अधिगम की विशेषताएं बताइए।

(4) शैक्षिक संसाधनों के प्रकार बताइए।

(5) वाणिज्य शास्त्र के शिक्षण में श्रव्य–दृश्य संसाधनों का महत्व बताइए।

(6) वाणिज्य शिक्षण हेतु मानचित्र की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

(7) वाणिज्य शिक्षण में ओवरहेड प्रोजेक्टर की उपयोगिता को समझाइए।

13.6 चर्चा के बिंदु

1. छात्र श्रव्य–दृश्य संसाधनों के महत्व एवं उपयोगिता पर चर्चा करेंगे।
2. छात्र आपस में विभिन्न शैक्षिक संसाधनों के निर्माण एवं उपयोगिता पर चर्चा करेंगे।
3. छात्र आपस मे श्यामपट्ट कार्य की उपयोगिता पर चर्चा करेंगे।
4. छात्र, शिक्षक के साथ बुलेटिन बोर्ड की उपयोगिता पर चर्चा करेंगें।
5. छात्र मानचित्र के उपयोग एवं लाभ पर चर्चा करेंगे।
6. वाणिज्य शिक्षण मे पत्र–पत्रिकाओं के महत्व पर अपने शिक्षक के साथ चर्चा करेंगे।
7. छात्र अपने साथियों के साथ चित्र एवं ओवरहेड–प्रोजेक्टर के उपयोग एवं महत्व पर चर्चा करेंगे।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) सीखना अनुभव व प्रशिक्षण के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन है

(2) प्रकृति प्रदत अथवा मानव निर्मित समस्त वस्तुएँ जिनका मानव अपने विकास अथवा आवश्यकता की पूर्ति हेतु उपयोग करता है संसाधन कहलाती है।

(3) प्रयोग एंव निर्माण की दृष्टि से शैक्षिक संसाधनों को चार प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

(4) श्रव्य–दृश्य संसाधनों में चलचित्र, दूरदर्शन की शैक्षिक सामग्री, ऑडियो–वीडियो सामग्री व नाटक आदि आते हैं।

(5) प्रमुख शैक्षिक संसाधनों में पाठ्यपुस्तकें, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल के मैदान, कक्षाकक्ष, श्यामपट्ट, सूचना पट्ट, ओवरहेड प्रोजेक्टर, रिकॉर्डर, चित्र, मानचित्र, रेखाचित्र इत्यादि आते हैं।

(6) मानवीय संसाधनों के अंतर्गत शिक्षक, छात्र व शिक्षक शिक्षा केंद्र के समस्त कर्मचारीगण आते हैं ।

(7) ओवरहेड प्रोजेक्टर के माध्यम से बड़े पर्दे पर छात्रों के सम्मुख– चित्र, मानचित्र, रेखाचित्र, ग्राफ, सारांश, प्रमुख संवाद, इत्यादि का प्रस्तुतीकरण प्रभावशाली तरीके से सरलतापूर्वक किया जा सकता है ।

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) त्यागी, गुरसरन दास (2012), 'वाणिज्य शिक्षण', अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।

(2) गुप्ता, एस० पी०एवं गुप्ता, अलका (2004), 'उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान,' शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

(3) वाजपेई, एल०बी०(2000), 'शिक्षा में नवाचार एवं तकनीकी,' आलोक प्रकाशन प्रयागराज।

(4) कुलश्रेष्ठ, एस०पी०(2012), 'शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार,' श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

इकाई 14 : पाठ्यपुस्तकें, पत्रिकाएं, हस्तपुस्तिकायें, छात्र कार्यपुस्तिका

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 इकाई के उद्देश्य

14.3 पाठ्यपुस्तकें

14.3.1 पाठ्यपुस्तकों का छात्रों के लिए महत्व

14.3.2 पाठ्यपुस्तकों का शिक्षक के लिए महत्व

14.3.3 पाठ्यपुस्तकों की विशेषताएँ

14.3.4 उपयुक्त पाठ्यपुस्तक के चयन के मूलभूत सिद्धान्त

14.3.5 वाणिज्य के पाठ्यपुस्तक की विशेषताएँ

14.3.6 वाणिज्य की पाठ्यपुस्तक का चयन

14.4 पत्रिकाएँ

14.4.1 पत्रिकाओं की उपयोगिता

14.4.2 पत्रिकाओं का चयन करते समयाध्ययन रखने योग्य बातें

14.5 हस्तपुस्तिका

14.5.1 हस्तपुस्तिका की विशेषताएँ

14.5.2 वाणिज्य शास्त्र में हस्तपुस्तिका की उपयोगिता

14.6 छात्र कार्यपुस्तिका

14.6.1 कार्य पुस्तिका का महत्व/उपयोगिता

14.7 सारांश

14.8 अभ्यास के प्रश्न

14.9 चर्चा के बिंदु

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

सीखने के सहायक संसाधनों में पाठ्यपुस्तकों, पत्रिकाओं, हस्तपुस्तिका इत्यादि का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। बिना पाठ्यपुस्तकों की मदद के औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की कल्पना भी बेमानी है। औपचारिक शिक्षा प्रदान करने के लिए समाज ने विद्यालय रूपी जिस संस्था का निर्माण किया है, वहां कोई भी शिक्षा बिना पाठ्यपुस्तकों, पत्रिकाओं, संदर्भग्रंथों, हस्तपुस्तिका, पांडुलिपियों इत्यादि के बिना अधूरी है। मानव इतिहास की समूची ज्ञान राशि का संचित भंडार पुस्तकों के माध्यम से ही सुरक्षित रहता है तथा अगली पीढ़ी को हस्तांतरित होता है। इसलिए प्रत्येक विद्यालय में पाठ्य–पुस्तकें, पत्रिकाएं, कार्य–पुस्तिकाएँ व हस्तपुस्तिका सीखने हेतु महत्वपूर्ण संसाधन होती है। वाणिज्य शास्त्र के शिक्षण एंव सीखने में भी इन्हीं पुस्तकों, पत्रिकाओं, हस्तपुस्तिका तथा कार्यपुस्तिका, अध्यापक एवं छात्रों द्वारा उपयोग किया जाता है।

14.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. पाठ्यपुस्तकों का महत्व बता सकेंगे ।
2. वाणिज्य की पाठ्यपुस्तकों की विशेषताएं बता सकेंगे।
3. वाणिज्य के अध्ययन में पत्रिकाओं का महत्व बता सकेंगे।
4. हस्तपुस्तिका की उपयोगिता समझा सकेंगे।
5. कार्यपुस्तिका की उपयोगिता पर प्रकाश डाल सकेंगे।

14.3 पाठ्यपुस्तकें

लेखन कला के विकास से पूर्व शिक्षा श्रुति परम्परा अथवा व्याख्यान प्रणाली से प्रदान की जाती थी। जब लेखनकला का अभ्युदय हुआ तब से पुस्तकों का निर्माण प्रारंभ हुआ। परंतु पुस्तक लेखन में क्रान्ति का प्रादुभार्व मुद्रण यंत्रों के विकास के फलस्वरूप हुआ। आधुनिक काल में शिक्षा के साधनों के रूप में पाठ्यपुस्तकों का अत्यधिक महत्व है। पुस्तकें अध्ययन व अधिगम में शिक्षक तथा छात्र दोनों का पथ–प्रदर्शन करती हैं। भारत के विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षण तथा अधिगम के साधन के रूप में पाठ्यपुस्तकों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से छात्र विभिन्न विद्वानों, अन्वेषकों तथा मनीषियों के ज्ञान तथा विचार से लाभान्वित होते हैं। पुस्तकें शिक्षकों के लिए महत्वपूर्ण संसाधन हैं, जिसकी सहायता से उसे ज्ञानार्जन तथा शिक्षण कार्य में सहायता मिलती है। प्रो० कीटिंग के अनुसार ''पाठ्यपुस्तकें शिक्षण का आधार यंत्र है।''

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आधुनिक समय में शिक्षण एवं अधिगम को सुगम तथा बोधगम्य बनाने में पाठ्यपुस्तकों का महत्वपूर्ण योगदान है।

14.3.1 पाठ्यपुस्तकों का छात्रों के लिए महत्व

1. पाठ्य–पुस्तकों के माध्यम से छात्र विभिन्न विचारकों और लेखकों के संपर्क में आते हैं।
2. पाठ्य–पुस्तकों के द्वारा छात्र विद्वानों के संकलित विचारों का अध्ययन करते हैं।
3. पाठ्य–पुस्तकें छात्रों में स्वाध्याय की आदत डालती है।
4. पाठ्य– पुस्तकों के माध्यम से छात्रों को व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त होता है।
5. पाठ्य–पुस्तकें छात्रों को समय का सदुयोग सीखाती हैं।
6. पाठ्य–पुस्तकें छात्रों को सक्रिय रखती हैं तथा उन्हें अध्ययन हेतु प्रेरित करती हैं।
7. पाठ्य–पुस्तकें छात्रों की स्मरण शक्ति का विकास करती हैं।
8. पाठ्यचर्या के अनुसार रचित होने पर पाठ्यपुस्तकें छात्रों को सहज ज्ञान प्रदान करती हैं।
9. पाठ्य–पुस्तकें छात्रों की ज्ञान निधि होती है।
10. पाठ्य पुस्तकों द्वारा छात्रों को अभ्यास में मदद मिलती है। वाणिज्य जैसे विषय में निरंतर अभ्यास द्वारा ही पूर्णता आती है।

14.3.2 पाठ्यपुस्तक का शिक्षक के लिए महत्व

1. पाठ्य–पुस्तकें शिक्षकों के ज्ञानवर्धन में अत्यंत सहायक होती हैं।
2. पाठ्य–पुस्तकें शिक्षण कार्य में शिक्षकों की सहायता एवं समय की बचत करती हैं।
3. पाठ्य– पुस्तकें प्रायः कक्षा के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी जाती हैं। अतः इससे अध्यापक को अध्यापन के समय काफी मदद मिलती है।

4. पाठ्य– पुस्तकें नवीन अध्यापकों के लिए पथ–प्रदर्शक का कार्य करती हैं।

5. पाठ्य–पुस्तकें अध्यापन कार्य करते समय अध्यापक को विषय से भटकने नहीं देती हैं।

14.3.3 पाठ्य–पुस्तक की विशेषताएं

1. पाठ्यपुस्तकों द्वारा छात्रों के समय की बचत होती है। छात्रों को इनके माध्यम से ज्ञानराशि का संचित रूप एक स्थान पर प्राप्त हो जाता है।

2. पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से शिक्षक एवं छात्र विद्वानों के अनुभव, ज्ञान तथा विचारों का लाभ प्राप्त करते हैं।

3. पाठ्यपुस्तकों द्वारा अध्यापक एवं छात्रों में स्वाध्याय की आदत का विकास होता है।

4. पाठ्यपुस्तकों द्वारा छात्रों को पाठ्यक्रम की सीमाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

5. पाठ्यपुस्तकों द्वारा छात्रों को पाठ्य–विषय का क्रमबद्ध सुव्यवस्थित तथा सुस्पष्ट ज्ञान प्रदान किया जाता है। इस प्रकार पाठ्यपुस्तकों की प्रमुख विशेषताएं उनकी सुनिश्चितता है।

14.3.4 उपयुक्त पाठ्यपुस्तक के चयन के मूलभूत सिद्धांत

वाणिज्य की **पाठ्यपुस्तक** के चयन में शिक्षक को निम्नलिखित सिद्धान्तों का विशेष ध्यान रखना चाहिए–

(1) पाठ्य–पुस्तक छात्रों की रूचि, योग्यता, उम्र, मानसिक स्तर, प्रवृतियों आदि के अनुरूप होनी चाहिए।

(2) पाठ्य–पुस्तक में विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित होना चाहिए।

(3) पाठ्य–पुस्तक में अभ्यास के लिए प्रश्न, निर्देश, सहायक पुस्तकों की सूची, अनुक्रमणिका, प्रस्तावना आदि उचित ढंग तथा विषय वस्तु के अनुकूल होने चाहिए।

(4) पाठ्य– पुस्तक में तालिकाएँ, ग्राफ, रेखाचित्र एंव रेखाकृतियाँ मानचित्र, आंकड़े एंव उदाहरण अद्यतन, शुद्ध तथा पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए।

(5) पाठ्य–पुस्तक में प्रस्तुतीकरण सीखने के नियमों के अनुकूल होना चाहिए।

(6) पाठ्य– पुस्तक वैयक्तिक विभिन्नताओं को संतुष्टि प्रदान करने वाला होना चाहिए।

(7) पाठ्य–पुस्तक छात्रों की विषय के प्रति रूचि जागृत करने वाला होना चाहिए।

(8) पाठ्य–पुस्तक को छात्रों के मानसिक व संवेगात्मक स्तर के अनुकूल होना चाहिए।

14.3.5 वाणिज्य शास्त्र के पाठ्य–पुस्तक की विशेषताएं–

वाणिज्य विषय की पाठ्य पुस्तक में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए–

(1) **पाठ्यवस्तु**– वाणिज्य शास्त्र की पाठ्य–पुस्तक में विषयवस्तु प्रासंगिक, उपयुक्त, प्रमाणिक, अद्यतन तथा व्यवसायिक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए।

(2) **पाठ्यवस्तु का संगठन**– वाणिज्य शास्त्र की पाठ्यवस्तु में विषयवस्तु इकाइयों तथा उपइकाइयों में विभक्त होनी चाहिए। इन इकाइयों में विषयवस्तु मनोवैज्ञानिक उपागम के अनुकूल संगठित होनी चाहिए।

(3) **पाठ्यवस्तु का प्रस्तुतीकरण**– वाणिज्य शास्त्र की पाठ्य–पुस्तक में विषय–वस्तु का प्रस्तुतीकरण रोचक, प्रेरणास्पद और सृजनात्मकता को बढ़ावा देने वाला होना चाहिए। प्रस्तुतीकरण में सरल तथा एकार्थी शब्दावली का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(4) **भाषा**– **पाठ्यपुस्तक** में शब्दवाली सरल तथा वाक्यांश छोटा होने चाहिए।

(5) **उदाहरण**– **पाठ्यपुस्तक** में उदाहरण विषय के अनुकूल, स्पष्ट तथा अद्यतन होना चाहिए।

(6) **भूमिका या प्रस्तावना**– वाणिज्य की **पाठ्यपुस्तक** में भूमिका को पुस्तक के प्रमुख प्रसंग तथा क्षेत्र अभिव्यक्त करने वाली होनी चाहिए। यह इतनी प्रभावशाली होनी चाहिए कि उसको पढ़कर पाठक उसकी प्रमुख विशेषताओं को जानने में समर्थ हो सके।

(7) **विषय सूची, संदर्भग्रंथ–सूची एवं अनुक्रमणिका**– वाणिज्य शास्त्र की पाठ्यपुस्तक में विषय सूची, संदर्भग्रंथ–सूची तथा अनुक्रमणिका को शुद्ध एवं क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(8) **मूल्य**– वाणिज्य की पाठ्य–पुस्तक का मूल्य कम से कम होना चाहिए। इसका निर्धारण छात्रों की आर्थिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

14.3.6 वाणिज्य की पाठ्यपुस्तक का चयन

वाणिज्य की **पाठ्यपुस्तक** को चुनते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. पाठ्य–पुस्तक छात्रों की रूचि, आयु व मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर लिखी गई हो ।
2. पाठ्यपुस्तक पाठ्यचर्या के अनुसार होनी चाहिए।
3. पाठ्यपुस्तक में विषयवस्तु का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होना चाहिए।
4. वाणिज्य प्रयोगात्मक विषय है। अतः इसके लिए **पाठ्यपुस्तक** का चयन करते समय देखना चाहिए कि इसमें सैद्धांतिक ज्ञान के साथ साथ, उससे सम्बन्धित प्रयोगात कार्य भी दिया गया हो।
5. वाणिज्य की पुस्तक ऐसी होनी चाहिए कि छात्र उसकी मदद से वाणिज्य जगत की समस्याओं को हल कर सके।
6. वाणिज्य की **पाठ्यपुस्तक** के पाठों का विभाजन तर्कसम्मत होना चाहिए। पाठों का पारस्परिक सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक ढंग से होना चाहिए।
7. वाणिज्य की पुस्तक ऐसी होनी चाहिए जो छात्रों में ऐसी भावना भर दे कि वे देश के आर्थिक विकास में सहयोग दें।
8. वाणिज्य के उपविषय जैसे– पुस्तपालन तथा लेखाकार्य की पुस्तक में उदाहरणों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए।
9. वाणिज्य की पुस्तक में छात्रों के अभ्यास के लिए पाठ के अंत में प्रश्न, निर्देश, सहायक पुस्तकों की सूची अवश्य होनी चाहिए।
10. वाणिज्य के पुस्तक की भाषा सरल तथा स्पष्ट होनी चाहिए।

11 वाणिज्य की पुस्तक में चित्र, रेखाचित्र, तालिकाएँ तथा आंकड़े पर्याप्त, समसामयिक व स्पष्ट होने चाहिए।

12. वाणिज्य की पुस्तक 'सीखने के नियम' के अनुकूल तथा छात्रों की रूचि को जागृत करने वाली होनी चाहिए।
13. पुस्तक की छपाई, स्पष्ट व साफ होनी चाहिए। इसका कवरपृष्ठ सुंदर तथा आकर्षक होना चाहिए। पन्नों की गुणवत्ता अच्छी होनी चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. प्रो० कीटिंग के अनुसार पाठ्यपुस्तक की परिभाषा क्या है?

....

....

....

2. अच्छी पाठ्यपुस्तक की कोई दो विशेषताएं बताइए।

....
....
....

3. वाणिज्य विषय की पाठ्यपुस्तक का चयन करते समय ध्यान रखने योग्य कोई दो बातें बताइए।

....
....
....

14.4 पत्रिकाएँ

पत्रिकाएँ वाणिज्य के शिक्षण, अध्ययन व सीखने मे अत्यंत सहायक होती है। वाणिज्य शास्त्र के शिक्षकों एवं छात्रों को अध्ययन हेतु पत्रिकाओं का चयन सावधानीपूर्वक करना चाहिए। वाणिज्य से सम्बन्धित देश विदेश की अद्यतन घटनाओं की जानकारी इन पत्रिकाओं से शिक्षक एवं छात्रों को होती है। केवल पुस्तकीय ज्ञान वाणिज्य–शास्त्र के छात्रों के लिए पर्याप्त नहीं होता। क्योंकि पाठ्यपुस्तकों में पिछले वर्षों की घटनाओं व तथ्यों का ही वर्णन होता है, परंतु पत्रिकाओं में विषय विशेषज्ञों के विचार समय समय पर मिलते रहते हैं। पत्रिकाओं से छात्रों को वाणिज्य सम्बन्धी समस्याओं का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। ये पत्रिकाएँ छात्रों का मानसिक विकास करती हैं। वाणिज्य के शिक्षक का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह छात्रों में इन पत्रिकाओं के अध्ययन के प्रति रूचि पैदा करें। पत्रिकाओं के माध्यम से छात्र तथा अध्यापक दोनों को ही देश के आर्थिक क्षेत्र में होने वाली गतिविधियों से परिचित होने का अवसर मिलता है। विद्यालय, कॉलेज एवं विश्वविद्यालय में आर्थिक क्षेत्र की गतिविधियों पर जानकारी उपलब्ध कराने वाली पत्रिकाओं को अवश्य मँगाना चाहिए।

14.4.1 पत्रिकाओं की उपयोगिता

वाणिज्य के छात्रों व अध्यापकों हेतु आर्थिक विषयों पर प्रकाशित होने की पत्रिकाओं की उपयोगिता निम्नवत है–

(1) पत्रिकाएँ हमें प्रमाणिक ज्ञान प्रदान करने में सहायक होती हैं।

(2) पत्रिकाओं द्वारा देश के प्रमुख उद्योग धंधों, आयात–निर्यात सम्बन्धी अद्यतन जानकारी प्राप्त होती है।

(3) पत्रिकाएँ छात्रों के व्यवहारिक ज्ञान में वृद्धि करती है।

(4) पत्रिकाओं द्वारा देश की आर्थिक गतिविधियों, पंचवर्षीय योजनाओं, औद्योगिक तथा व्यापारिक संस्थाओं के आंकड़ों आदि की जानकारी प्राप्त होती है।

(5) पत्रिकाएँ छात्रों के समसामयिक ज्ञान की वृद्धि में सहायक होती हैं।

(6) पत्रिकाओं द्वारा छात्र देश–विदेश के प्रसिद्ध व्यापारियों, उद्योगपतियों, बैंकरो, अर्थशास्त्रियों वाणिज्य के शिक्षकों के अनुभवों व विचारों से परिचित होते हैं।

(7) पत्रिकाओं के अध्ययन से छात्रों के तर्क क्षमता व निर्णय शक्ति में वृद्धि होती है।

14.4.2 पत्रिकाओं का चयन करते समय ध्यान रखने योग्य बातें–

वाणिज्य विषय से सम्बन्धित पत्रिकाओं का चयन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए–

1. शिक्षक को पत्रिकाओं का चयन छात्रों की अवस्था उम्र के अनुसार करना चाहिए। छोटी कक्षाओं के लिए मॉडर्न रिव्यू आदि पत्रिका ज्यादा उपयोगी होती है। जैसें– योजना, कुरूक्षेत्र आदि पत्रिकाएं।
2. पत्रिकाओं की वाह्य डिजाइन सुंदर तथा आकर्षक होनी चाहिए।

3. पत्रिकाओं का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसमें विषय से सम्बन्धित– सारणी, तालिका व आंकड़े दिए गये हों। इससे उसकी विषयवस्तु तथ्यपरक हो जाती है।

4. पत्रिकाओं का चयन करते समय राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का भी चुनाव करना चाहिए।

5. आर्थिक जगत की जानकारी उपलब्ध कराने वाली कुछ चर्चित पत्रिकाएं जैसे– कॉमर्स, फाइनेंस, इकोनॉमिस्ट, कैपिटल, इंडियन ट्रेड जनरल आदि को अवश्य मंगानी चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–

(क) बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गये उत्तर से करें।

4. आर्थिक क्षेत्र की जानकारी उपलब्ध कराने वाली पत्रिका का चयन करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

....

....

....

5. आर्थिक क्षेत्र की जानकारी उपलब्ध कराने वाली किन्ही दो प्रमुख पत्रिकाओं के नाम

बताइए।

....

....

....

14.5 हस्तपुस्तिका

हस्तपुस्तिका से आशय आकार में छोटी किंतु महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ से है जो विषय विशेष से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराती हैं। हस्तपुस्तिका संदर्भ कार्य अथवा निर्देशों का एक रूप होती है जो जरूरत के अनुरूप प्रयुक्त होती हैं। वास्तव में हस्तपुस्तिका से अभिप्राय ऐसी पुस्तिका से है जो उस विषय की महत्वपूर्ण जानकारी अपने उपभोगकर्ता को प्रदान करती हैं। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार "हस्तपुस्तिका किसी विषय या व्यवसाय के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी अथवा निर्देश उपलब्ध कराती है।'' वास्तव में हस्तपुस्तिका किसी क्षेत्र विशेष अथवा विषय में हो रहे परिवर्तनों व उससे सम्बन्धित विषय पर विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराती हैं। इनका निर्माण इस तरह से किया जाता है कि किसी क्षेत्र से सम्बन्धित विषय पर शीघ्रतापूर्वक तथा आसानी से वृहद व सुव्यवस्थित जानकारी मिल सके। उदाहरणस्वरूप– इंजिनियर्स हैंडबुक, केमेस्ट्री हैंडबुक, फिजिक्स हैंडबुक, कॉमर्स हैंडबुक इत्यादि। हस्तपुस्तिका शब्द मूलरूप से एक छोटी या पोर्टेबल पुस्तक पर लागू होता है जिसमें उसके मालिक के लिए उपयोगी जानकारी होती है। इसे जेब में रखी जा सकने वाली पुस्तिका के रूप में भी जाना जाता है। यह किसी भी विषय, विशेष तौर पर विशेष क्षेत्र या तकनीकी के बारे में जानकारी के संग्रह होते हैं। इन्हें आसानी से परामर्श और एक निश्चित क्षेत्र में त्वरित ज्ञान प्रदान करने के लिए तैयार किया जाता है।

14.5.1 हस्तपुस्तिका की विशेषताएँ

1. यह किसी विषय पर वृहद व विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराती हैं।

2. हस्तपुस्तिका में उस विषय से सम्बन्धित नवाचार, शोध, समसामयिक तकनीकी व वैज्ञानिक खोजों का विस्तृत विवरण मिलता है।

3. यह छात्रों एवं शिक्षकों को पाठ्यक्रम व विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराती है ।
4. शोध अध्येयताओं के लिए हस्तपुस्तिका महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराती है।
5. यह विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी का संग्रह होती है।
6. आकार में छोटी होने के कारण इसको साथ रखकर यात्रा आदि के समय भी अध्ययन किया जा सकता है।
7. विषय से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण जानकारी एक स्थान पर मिल जाती है ।

14.5.2 वाणिज्य शिक्षण में हस्तपुस्तिका की उपयोगिता

1. वाणिज्य एक महत्वपूर्ण विषय है जो छात्रों को व्यवसाय व व्यापार की गतिविधियों व उसके लेखन की विधियों के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराती है। वाणिज्य शास्त्र की हस्त पुस्तिका इस क्षेत्र में विस्तृत अध्ययन हेतु छात्रों एवं शिक्षकों को महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराती है।
2. वाणिज्य के क्षेत्र में हो रहे नित–नूतन परिवर्तन एवं आकांक्षाओं से हस्तपुस्तिका अवगत कराती है।
3. विश्व स्तर पर हो रहे व्यापार व उसकी दशा की विस्तृत जानकारी छात्रों व शिक्षकों को हस्तपुस्तिका के माध्यम से प्राप्त होती है।
4. हस्तपुस्तिका के द्वारा शिक्षक को शिक्षण हेतु आवश्यक विषय सामग्री उपलब्ध होती है।
5. हस्तपुस्तिका के माध्यम से वाणिज्य के छात्रों में स्वाध्याय की भावना का विकास होता है।
6. हस्तपुस्तिका द्वारा छात्रों को वाणिज्य विषय का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है।
7. हस्तपुस्तिका वाणिज्य के शिक्षकों व छात्रों को विषय के पाठ्यपुस्तकों से व्यापक व अद्यतन जानकारी उपलब्ध कराती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

6. हस्तपुस्तिका क्यों उपयोगी है?

....
....
....

7. हस्तपुस्तिका की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ बताएँ।

....
....
....

14.6 छात्र कार्यपुस्तिका

कार्यपुस्तिका का उपयोग सामान्यतः अभ्यास कार्य हेतु किया जाता है। इसका विकास अमेरिका में हुआ। जहां इसको पेपर बैंक पाठ्यपुस्तक के रूप में छात्रों को प्रदान किया गया जिसमें वे प्रश्नों के उत्तर को सीधे उसी पुस्तक में लिखते थे। वास्तव में कार्यपुस्तिका एक ऐसी पुस्तिका होती है जिसमें अभ्यास हेतु पाठ्यक्रम पर प्रश्न अथवा अभ्यास कार्य दिए रहते हैं। प्रश्नों के ठीक नीचे रिक्त स्थान दिए रहते हैं जहां छात्र अपने उत्तर दर्ज करते हैं। प्रायः कार्यपुस्तिका स्कूल में छोटे बच्चों के अभ्यास कार्य हेतु प्रयोग में लाई जाती हैं। इसका

कारण यह है कि छोटे बच्चे पाठ्यपुस्तक में ही लिखने अथवा सीखने हेतु ज्यादा उत्सुक रहते हैं। इसमें पाठ्यचर्या पर आधारित अभ्यास कार्य को रोचक एवं आकर्षक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। अतः यह प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के बच्चों हेतु अत्यंत लाभकारी है। कार्यपुस्तिका का एक अन्य लाभ यह है कि इससे छात्रों को अपनी गति से सीखने का अवसर मिलता है। कार्यपुस्तिका का उपयोग गणित एवं प्रयोगात्मक विषयों को सीखने हेतु भी होता है। यह प्रतियोगी परीक्षाओं के छात्रों के लिए भी अत्यंत उपयोगी होती है। यह ललितकला जैसे विषय के अभ्यास हेतु महत्वपूर्ण विषय सामग्री उपलब्ध कराती है।

आजकल इलेक्ट्रॉनिक कार्यपुस्तिका का उपयोग अभ्यास एवं सीखने के लिए महत्वपूर्ण साधन के रूप में होती है। ऑनलाइन पाठ्यक्रम में इसका बहुतायत से उपयोग होता है। बेवस्टर शब्दकोष के अनुसार ''कार्यपुस्तिका छात्रों के लिए ऐसी पुस्तक होती है जिसमें समस्या का उत्तर भी छात्रों द्वारा लिखा जाता है।'' जबकि मरियम शब्दकोष के अनुसार ''कार्यपुस्तिका समस्याओं अथवा अभ्यास कार्य से पूर्ण ऐसी पुस्तक होती है जिसका उपयोग छात्र पाठ्यचर्या के पूर्व कार्य के रूप में करते हैं।''

14.6.1 कार्य पुस्तिका का महत्व/उपयोगिता

कार्य पुस्तिका की उपयोगिता निम्नवत है–

1. कार्यपुस्तिका का उपयोग अभ्यास कार्य एवं कक्षा कार्य को पूर्ण करने के लिए होता है।
2. छोटे बच्चों के सीखने एंव अभ्यास हेतु कार्य पुस्तिका अत्यंत उपयोगी है।
3. पाठ्यक्रम पर आधारित पर्याप्त अभ्यास कार्य हेतु कार्यपुस्तिका सबसे उपयुक्त साधन है।
4. इसकी मदद से छात्र अपनी गति से सीखता है।
5. कार्यपुस्तिका का डिजिटल रूप पर्याप्त मात्रा में सरलता से उपलब्ध है। अतः यह इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों जैसे– कंप्यूटर, लैपटॉप, मोबाइल आदि पर भी सुगमतापूर्वक उपलब्ध है।
6. कार्यपुस्तिका सीखने एवं अभ्यास हेतु पर्याप्त सामग्री क्रमबद्ध एवं रोचक ढंग से उपलब्ध कराती है।
7. कार्यपुस्तिका से अभ्यास कार्य आसान हो जाता है।
8. छात्रों को कार्यपुस्तिका के माध्यम से सीखने का अनुभव रोचक होता है।
9. कार्यपुस्तिका के कारण अभ्यास हेतु अलग से नोटबुक की आवश्यकता नहीं पड़ती।
10. कार्यपुस्तिका से स्वाध्याय को बढ़ावा मिलता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

8. कार्यपुस्तिका की कोई दो विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

9. कार्यपुस्तिका को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

14.7 सारांश

आधुनिक समय में बिना पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन एंव अध्यापन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। सीखने के लिए आवश्यक संसाधनों में जिसका नाम सबसे पहले लिया जाता है वह है पाठ्य पुस्तकें। इसकी मदद से ही संचित ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता है। पत्रिकाएं भी किसी विषय पर ज्ञान प्रदान करने का दूसरा महत्वपूर्ण साधन हैं। हस्तपुस्तिका किसी विषय का व्यापक ज्ञान प्रदान करती हैं। कार्यपुस्तिका अभ्यास हेतु पर्याप्त सामग्री उपलब्ध कराती हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि पाठ्यपुस्तकें, पत्रिकाएँ, हस्तपुस्तिका एवं कार्यपुस्तिका पठन–पाठन के महत्वपूर्ण संसाधन है। इनके बिना शिक्षण एवं अधिगम का कार्य सुचारू एवं व्यवस्थित ढंग से होना असंभव नहीं तो दुष्कर कार्य अवश्य है ।

14.8 अभ्यास के प्रश्न

1. पाठ्यपुस्तक की विशेषताएं क्या हैं?।
2. वाणिज्य की पाठ्यपुस्तक का चयन करते समय कौन–कौन सी बातों का ध्यान रखना आवश्यक हैं?
3. वाणिज्य के अध्ययन में पत्रिकाओं की क्या उपयोगिता है?
4. हस्तपुस्तिका की कौन–कौन सी विशेषताएं हैं?
5. कार्यपुस्तिका के महत्व एवं उपयोगिता पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

14.9 चर्चा के बिंदु

1. छात्र आपस में पत्रिकाओं के महत्व व उपयोगिता पर चर्चा करेंगे।
2. छात्र आपस में हस्त पुस्तिका के महत्व एवं विशेषताओं पर चर्चा करेंगे।
3. छात्र आपस में विषय को सीखने हेतु कार्यपुस्तिका के उपयोग पर चर्चा करेंगे।

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. प्रो० कीटिन के अनुसार "पाठ्यपुस्तकें शिक्षण का आधार यंत्र है।"
2. अच्छी पाठ्यपुस्तक की दो विशेषताएँ निम्न हैं –
   (i). पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से छात्रों को व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त होता है।
   (ii). पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से पाठक विभिन्न विद्वानों व मनीषियों के विचारों एवं खोजों से परिचित होते हैं।
3. वाणिज्य पाठ्यपुस्तक का चयन करते समय ध्यान रखने योग्य बातें–
   (i). पाठ्यपुस्तक पाठ्यक्रम के अनुसार होनी चाहिए ।
   (ii). पाठ्यपुस्तक में विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण करते समय मनोवैज्ञानिक नियमों का पालन होना चाहिए।
4. आर्थिक क्षेत्र के विषय की पत्रिका में अद्यतन एवं तथ्यपरक जानकारी के साथ साथ विषय से सम्बन्धित सारणी, तालिका, आंकड़े आदि दिए होने चाहिए।
5. आर्थिक जगत की जानकारी देने वाली दो प्रमुख पत्रिकाएँ–
   (i). कॉमर्स
   (ii). फाइनेंस
6. हस्त पुस्तिका किसी विषय पर विस्तृत एवं अद्यतन जानकारी सरल एवं रोचक तरीके से उपलब्ध कराने के कारण उपयोगी है।

7. हस्तपुस्तिका की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्न हैं–

(i). हस्तपुस्तिका किसी विषय पर विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराती है ।
(ii). हस्तपुस्तिका के द्वारा छात्रों में स्वाध्याय की भावना का विकास होता है ।

8. कार्यपुस्तिका की दो विशेषताएं निम्नवत है–

(i). कार्यपुस्तिका का उपयोग अभ्यास कार्य हेतु किया जाता है ।
(ii). यह छात्रों को अपनी गति से सीखने का अवसर उपलब्ध कराती है ।

9. वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार "कार्य पुस्तिका छात्रों के लिए ऐसी पुस्तक होती है जिसमें समस्या का उत्तर भी छात्रों द्वारा लिखा जाता है।''

14.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. त्यागी, गुरूसरन दास (2012), 'वाणिज्य शिक्षण', अग्रवाल पॅब्लिकेशन आगरा।
2. कुलश्रेष्ठ, एस०पी० (2012), 'शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार', श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
3. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज (2017),' वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ– 250001
4. माथुर, एस0एस0, (1994),' शिक्षण कला,' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
5. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001
6. सिंह, आर0पी0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'पेडागागी आफ स्कूल सब्जेक्ट कामर्स,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001

इकाई 15 : वाणिज्य प्रयोगशाला, कक्षा एवं कक्षा के बाहर अधिगम संसाधन

इकाई की संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 इकाई के उद्देश्य

15.3 वाणिज्य प्रयोगशाला

15.4 वाणिज्यशास्त्र की कक्षा–कक्ष

15.5 वाणिज्य शिक्षण हेतु शैक्षिक पर्यटन

15.5.1 वाणिज्य के शिक्षण में पर्यटन से लाभ

15.5.2 शैक्षिक पर्यटन की योजना बनाते समय ध्यान रखने योग्य सावधानियाँ

15.6 सारांश

15.7 अभ्यास के प्रश्न

15.8 चर्चा के बिंदु

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

शिक्षण–अधिगम की क्रिया जब से छात्र केन्द्रित हुई है तब से कक्षा–शिक्षण का पूरा स्वरूप ही बदल गया है। अब छात्र मात्र श्रोता नही रहा अपितु वह सीखने वाला सक्रिय अंगी है। छात्र अधिगम का केन्द्र बिन्दु बन गया है। अतः उसकी रूचि, रूझान, सीखने की क्षमता आदि का महत्व बढ़ गया। इसके साथ ही प्रयोजनवादी शिक्षा दर्शन और यथार्थवादी शिक्षा दर्शन के बढ़ते प्रभाव ने भी शिक्षण विधियों में बदलाव किया है। इन सबके समग्र प्रभाव का असर है कि कक्षा मे अब रटने की जगह करके सीखने पर बल दिया जाता है। अब कक्षा चुपचाप केवल व्याख्यान सुनने की जगह नही रही अपितु वहाँ छात्रों को अधिक से अधिक करके सीखने का अवसर शिक्षकों द्वारा दिया जाने लगा है। यही कारण है कि शिक्षा जगत में प्रत्येक विषय की प्रयोगशाला एवं कार्यशाला का निर्माण होने लगा है। वाणिज्य विषय भी उससे अछूता नही रहा। यहाँ भी आधुनिक युग की जरूरत एवं अनुसंधान के फलस्वरूप हुए बदलाव के अनुरूप शिक्षण–अधिगम की पद्धति में परिवर्तन हो रहे हैं। शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में मनोविज्ञान के बढ़ते प्रभाव के फलस्वरूप वाणिज्य शिक्षा के क्षेत्र में नित नई क्रांतियों का प्रादूभार्व हो रहा है। अब कक्षा पहले की तरह नीरस नहीं रह गई है, अपितु वह सक्रिय रूप से सीखने का स्थान है। अब छात्र चुपचाप अपने गुरू की बातों को सुनता नहीं अपितु अपनी शंकाओं व जिज्ञासाओं पर शिक्षक के साथ खुलकर चर्चा करता है। अब कक्षा में केवल ज्ञान की बातें नहीं होती अपितु करके सीखने का प्रयास होता है। अब छात्र केवल व्याख्यान नहीं सुनता अपितु सक्रिय रूप से सहभगिता करते हुए प्रत्यक्ष विधि द्वारा ज्ञानार्जन का प्रयास करता है। वाणिज्य प्रयोगशाला, आधुनिक ढंग से सुसज्जित कक्षा–कक्ष और शैक्षिक पर्यटन वह संसाधन है जो छात्रों को सक्रिय रूप से अनुभव अर्जित करने अर्थात सीखने में मदद करते हैं। शैक्षिक पर्यटन छात्रों को प्रत्यक्ष रूप से सीखने का अवसर मुहैया कराता है। इस इकाई में हम वाणिज्य प्रयोगशाला, कक्षा–कक्ष और शैक्षिक पर्यटन का वाणिज्य शास्त्र के शिक्षण व अधिगम पर प्रभाव, महत्व एवं उपयोगिता पर चर्चा करेंगे।

15.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. वाणिज्य प्रयोगशाला के लाभ बता सकेंगे ।

2. वाणिज्य प्रयोगशाला की विशेषता बता सकेंगे।

3. वाणिज्य कक्षा–कक्ष में आवश्यक सुविधाओं की सूची बना सकेंगे ।

4. शैक्षिक पर्यटन को कक्षा के बाहर के संसाधनों के अध्ययन में उपयोगिता बता सकेंगे।

5. शैक्षिक पर्यटन की आवश्यकता पर प्रकाश डाल सकेंगे।

15.3 वाणिज्य प्रयोगशाला

वाणिज्य प्रयोगशाला, वाणिज्य शिक्षण के क्षेत्र में एक नूतन विचार है। वाणिज्य प्रयोगशाला ऐसा स्थान है जहां पर छात्र कक्षाओं में सीखे गए सैद्धांतिक ज्ञान पर वास्तविक परिस्थितियों या उससे मिलती–जुलती परिस्थितियों में प्रयोग करके सीखते हैं। प्रयोगशाला में छद्म व्यावसायिक गतिविधियों पर अधिक से अधिक अभ्यास कर सैद्धांतिक ज्ञान का भी वास्तविक परिस्थितियों में अनुभव किया जाता है। वाणिज्य की प्रयोगशाला में व्यावसायिक जगत की वास्तविक परिस्थितियों का अध्ययन करके छात्र व्यवसाय की कठिनाइयों एंव फायदे का अनुभव अर्जित करते हैं। जिससे उनके व्यवहारिक ज्ञान में वृद्धि तो होती ही है साथ ही छात्रों का आत्मविश्वास भी बढ़ता है। यही कारण है कि वाणिज्य की शिक्षा में प्रयोगशाला के महत्व को समझते हुए 'श्री प्रताप मेमोरियल राजपूत कॉलेज', 'कॉलेज ऑफ कॉमर्स (जम्मू कश्मीर)', 'पटना महिला कॉलेज' पटना', 'एम० ई० एस०जी० कॉलेज ऑफ कॉमर्स महाराष्ट्र', 'डी०ई० एस० वी० महाराष्ट्र कॉलेज ऑफ कॉमर्स' पुणे, ने अपने यहां वाणिज्य प्रयोगशाला की स्थापना की है। उस्मानिया विश्वविद्यालय ने वर्ष 2018 में अपने सभी कालेजों व स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में वाणिज्य प्रयोगशाला की स्थापना को मंजूरी देते हुए इसे अनिवार्य कर दिया है हालांकि यह निर्धारित करना अत्यंत कठिन है कि वाणिज्य प्रयोगशाला में किन–किन चीजों का अध्ययन होता है तथापि एक कुशल शिक्षक छात्रों की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न प्रकार के प्रयोगात्मक एवं समस्यात्मक गतिविधियों का शिक्षण वाणिज्य प्रयोगशाला में आयोजित करता है।

वाणिज्य प्रयोगशाला में सुसज्जित कंप्यूटर कक्ष अलग से होना चाहिए। प्रयोगशाला में प्रोजेक्टर, वीडियो–कैमरा, मल्टीमीडिया प्रोजेक्टर, लैपटॉप, टी०वी०, सी०डी०, एल०सी०डी० प्लेयर आदि शिक्षण सहायक सामग्री की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। समूह चर्चा, मीटिंग व अध्ययन हेतु व्यवस्थित कक्ष होना चाहिए। जिससे प्रयोगशाला का समुचित उपयोग किया जा सके। महत्वपूर्ण उद्योगपतियों, सफल व्यवसायियों/व्यापारियों आदि का फोटो हाल में लगा होना चाहिए। जिनसे छात्र प्रेरणा प्राप्त करें और उनकी सफलता की कहानियों से सीखते हुए आगे बढ़ने हेतु संकल्पित हों। प्रयोगशाला में छात्रों को सीखने के लिए छद्म आयकर रिटर्न विवरणी, विक्रीकर विवरणी, म्युनिसिपल टैक्स रिटर्न प्रपत्र आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। शेयर मार्केट की गतिविधियों जैसे शेयरों की खरीद–बिक्री, लेनदेन सम्बन्धी नियमों की जानकारी की व्यवस्था भी होनी चाहिए। प्रयोगशाला में छात्रों के द्वारा छद्म बाजार मेला, क्रय–विक्रय केंद्र, व्यवसायिक केंद्र आदि के आयोजन की भी सुविधा होनी चाहिए। वाणिज्य प्रयोगशाला छात्रों द्वारा अनुभव/महसूस की जा रही व्यवहारिक समस्याओं का समाधान सीखने हेतु एक अवसर उपलब्ध कराता है। यह सीखने हेतु एक ऐसा स्थान है जहां पर वाणिज्य के सैद्धांतिक ज्ञान को सरकार व समाज/व्यवसायियों द्वारा की जा रही विभिन्न व्यवसायिक गतिविधियों के आलोक में व्यवहारिक रूप से सीखने का अवसर व संसाधन दोनों मिलता है। फलतः छात्र व्यवसाय के सैद्धांतिक एंव व्यवहारिक दोनों तरह के ज्ञान से परिचित होते हैं।

15.3.1 वाणिज्य प्रयोगशाला के लाभ

वाणिज्य प्रयोगशाला के निम्नलिखित लाभ हैं–

1 वाणिज्य प्रयोगशाला में वाणिज्य शास्त्र के छात्रों को सीखे गए सैद्धांतिक ज्ञान पर प्रयोग करके सीखने का अवसर मिलता है ।

2. वाणिज्य प्रयोगशाला में छात्र व्यवसायिक जीवन की परिस्थितियों को छद्म वातावरण में करके अनुभव प्राप्त करते हैं ।

3. यहां पर छात्रों को व्यवसाय की कठिनाइयों का व्यवहारिक अनुभव प्राप्त होता है।

4. प्रयोगशाला में छात्र व्यवसाय के क्षेत्र में आ रही कठिनाइयों को दूर करने हेतु उपायों का अध्ययन करते

हैं।

5 वाणिज्य प्रयोगशाला में छात्रों को लेखाकार्य, आयकर रिटर्न, बिक्रीकर, गृहकर, इत्यादि के बारे में व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. वाणिज्य प्रयोगशाला में कौन–कौन सी सुविधाएं आवश्यक हैं?

....

....

....

2. वाणिज्य प्रयोगशाला के कोई दो लाभ बताइए।

....

....

....

15.4 वाणिज्य शास्त्र की कक्षा–कक्ष

वाणिज्य के छात्रों में यदि हमें व्यावसायिक कुशलता का विकास करना है तो विज्ञान की कक्षा की तरह वाणिज्य के लिए भी अलग कक्षा–कक्ष बनाने होंगे। इन कक्षा–कक्षों को आधुनिक शैक्षिक उपकरणों से पूर्णतः सुसज्जित करना होगा। वाणिज्य विभाग के लिए आवश्यक फर्नीचर और वस्तु आदि की भी समुचित व्यवस्था करनी होगी। वाणिज्य के लिए कम से कम चार कक्ष होने चाहिए। यह सभी कमरे एक साथ होने चाहिए। इन कक्षों का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि बिना बरामदे में आए आवश्यकता पड़ने पर एक कक्ष से दूसरे कक्ष में प्रवेश किया जा सके। वाणिज्य के चारों कक्ष निम्नलिखित प्रकार होने चाहिए–

(अ) व्याख्यान–कक्ष

इस कक्ष में शिक्षण कार्य होता है। इसमें श्यामपट्ट, व्याख्यान टेबल, छात्रों के बैठने की व्यवस्था, प्रकाश की व्यवस्था और दीवारों की साज–सज्जा इस प्रकार की होनी चाहिए कि कक्षा का वातावरण शांतिपूर्ण व शैक्षिक वातावरण को बढ़ावा देने वाला हो।

(ख) कंप्यूटर व आशुलिपि कक्ष

इस कक्ष में कंप्यूटर के रखने व बैठने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इस कक्ष में कंप्यूटर चलाने के लिए विधुत व्यवस्था व जनरेटर कनेक्शन की सुविधा भी होनी चाहिए। यहां पर पर्याप्त प्रकाश की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इस कक्ष में बुलेटिन बोर्ड होना चाहिए जिस पर समय–समय पर अध्यापन सामग्री को प्रदर्शित किया जा सके। इस कक्ष में आवश्यक फर्नीचर, छात्रों के बैठने की व्यवस्था, तथा आवश्यक पत्रावलियों के रखने हेतु अलमारी की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ग) लेखा शास्त्र एवं व्यवसायिक संगठन कक्ष

इस कक्षा में बुलेटिन बोर्ड की व्यवस्था के साथ–साथ शिक्षकों व छात्रों के बैठने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें लेखा से सम्बन्धित जानकारी पर चर्चा हेतु आवश्यक पुस्तकें व पत्रवालियों की व्यवस्था होनी चाहिए। इस कक्ष में प्रोजेक्टर मशीन व पर्दे की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

(घ) व्यावसायिक यंत्र कक्ष

इस कक्ष का उपयोग वाणिज्य सम्बन्धी उपकरणों को रखने के लिए होता है। इसका आकार अन्य कक्षों से छोटा रहता है। इस कक्ष में एक बुलेटिन बोर्ड होना चाहिए जिस पर आवश्यक सूचनाओं को प्रदर्शित किया जा सके। इस कक्ष का एक दरवाजा कंप्यूटर कक्ष में और एक दरवाजा बहीखाता/लेखा कक्ष में खुलना चाहिए। इस कक्ष में निम्नलिखित उपकरणों को रखने की व्यवस्था होनी चाहिए–

(1) केलकुलेटर

(2) खड़ी फाइल केबिनेट

(3) शिक्षक के लिए आवश्यक वाणिज्य विषयों से सम्बन्धित पुस्तकें, संदर्भ पुस्तकें एवं पत्र पत्रिकाएं

(4) वाणिज्य विषय से सम्बन्धित चित्र, रेखाचित्र, मॉडल आदि।

(5) भ्रमण रजिस्टर

(6) विभिन्न प्रकार के मानचित्र

(7) पंचिंग मशीन

(8) विभिन्न प्रकार के पत्र एवं लिफाफे

(9) ग्लोब, ग्राफ, बोर्ड आदि

(10) बैंक से सम्बन्धित प्रपत्र

(11) टेलिफोन, ओवरहेड प्रोजेक्टर, टेप रिकॉर्डर, रिकॉर्ड प्लेयर, फिल्म तथा फिल्म पट्टियां आदि।

(12) कागज काटने की मशीन व फोल्डिंग कुर्सियां आदि ।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

3. वाणिज्य शिक्षण हेतु कितने तरह के कक्षा–कक्ष की आवश्यकता होती है?

....

....

....

4. व्यवसायिक यंत्र किस–किस काम आता है?

....

....

....

15.5 वाणिज्य शिक्षण हेतु शैक्षिक पर्यटन

वाणिज्यशास्त्र एक व्यवहारिक विषय है। इसके व्यवहारिक पक्ष का ज्ञान प्रदान करने में पर्यटन की महत्वपूर्ण भूमिका है। कक्षा के बाहर सिखाने का यह उपयोगी विधि है। इसके द्वारा छात्रों को ऐसी वास्तविक परिस्थितियों का ज्ञान प्रदान किया जाता है जो कक्षा–कक्ष में सम्भव नहीं होता है। वाणिज्य में पर्यटन के लिए बहुत से अवसर उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ किसी औद्योगिक नगर का निरीक्षण, श्रमिकों की बस्तियां एवं ग्रामों का निरीक्षण, विकास योजनाओं यथा– बाँध, उद्योग–धंधों, मिलो, कारखानों, बिजली उत्पादन केंद्रों, बैंक

बाजार आदि के निरीक्षण का अवसर मिलता है।

15.5.1 वाणिज्य के शिक्षण में पर्यटन से लाभ

वाणिज्य के शिक्षण में पर्यटन से निम्नलिखित लाभ हैं–

1. पर्यटन द्वारा पाठ्यक्रम के अनुभवों को समृद्ध बनाया जाता है।
2. पर्यटन द्वारा बालकों के सामान्य ज्ञान में वृद्धि होती है।
3. यह छात्रों को वाणिज्य का व्यावहारिक अनुभव प्रदान करता है।
4. इसके माध्यम से छात्र वाणिज्य की वास्तविक परिस्थितियों से परिचित हो पाते हैं।
5. यह छात्रों के ज्ञान को आधुनिक व पूर्ण बनाता है।
6. यह व्याख्यान विधि की कमियों को पूर्ण करता है।
7. यह छात्रों को आर्थिक समस्याओं को समझने के लिए वास्तविक पृष्ठभूमि उपलब्ध कराता है।
8. पर्यटन आर्थिक–सम्बन्धों तथा व्यावसायिक जीवन की परिस्थितियों के निरीक्षण द्वारा वास्तविक ज्ञान प्रदान करता है।
9. यह छात्रों की मानसिक शक्तियों के विकास में सहायता प्रदान करता है ।

15.5.2 भौक्षिक पर्यटन की योजना बनाते समय ध्यान रखने योग्य सावधानियाँ

वाणिज्य के शिक्षक को पर्यटन की योजना बनाने एंव उसके क्रियान्वयन के समय निम्नलिखित सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए–

1. सबसे पहले भ्रमण की अवधि का निर्धारण करना चाहिए।
2. वाणिज्य शास्त्र के शिक्षकों को पर्यटन की योजना बनाने से पूर्व उन स्थानों या संस्थाओं का पर्यवेक्षण कर लेना चाहिए।
3. पर्यटन स्थल के बारे में सामान्य जानकरी से अवगत होने के पश्चात् ही शिक्षक को भ्रमण के मुख्य उद्दश्यों का निर्धारण करना चाहिए। उद्देश्य के निर्धारण के समय छात्रों के भी विचारों का ध्यान रखना चाहिए।
4. शिक्षक को पर्यटन स्थल तक आने–जाने के मार्ग तथा साधन का निर्धारण करना चाहिए।
5. पर्यटन के समय साथ ले जाने वाली वस्तुओं का निर्धारण कर लेना चाहिए।
6. शिक्षक को व्यवस्था प्रबंधन का कार्य छात्रों के छोटे–छोटे समूहों में बांट देना चाहिए।
7. छात्रों को पर्यटन स्थल की विशेष खूबियों व आवश्यक बातों को अपनी पर्यटन डायरी में नोट करने का निर्देश देते रहना चाहिए। शिक्षक को पर्यटन स्थल के महत्व को बताते समय पथ प्रदर्शक की भूमिका में रहना चाहिए।
8. यदि पर्यटन की अवधि 1 दिन से अधिक की हो तो रात्रि विश्राम के समय दिनभर के अनुभव पर एक बार चर्चा अवश्य कर लेनी चाहिए ।
9. पर्यटन स्थल के भ्रमण के पश्चात् लौटते समय अगर संभव हो तो दूसरे मार्ग से वापस आना चाहिए। इस तरह से दूसरे मार्ग में पड़ने वाले प्रमुख स्थलों का भ्रमण भी करने का अवसर प्राप्त होगा।
10. छात्रों को पर्यटन स्थल की महत्वपूर्ण बातों को तुरंत नोट करते रहने के निर्देश का पालन करना चाहिए।
11. पर्यटन के बाद छात्रों द्वारा भ्रमण का पूर्ण विवरण, चित्र, छायाचित्र इत्यादि लिपिबद्ध करवाकर उसे यात्रावृत की आख्या के रूप में वाणिज्य के पुस्तकालय में जमा करवाना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. वाणिज्य शिक्षण में पर्यटन से कोई दो लाभ बताइए।

....

....

....

6. पर्यटन की योजना बनाते समय सबसे पहले कौन–कौन से कार्य करने चाहिए?

....

....

....

15.6 सारांश

वाणिज्य के क्षेत्र मे द्रुत गति से परिवर्तन होते है। यह एक ऐसा विषय है जहाँ सम्भवतः सबसे तेजी से परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों से छात्रों को अवगत कराने और दुसरे जगहों की विविधता और जरूरतों से छात्रों को अवगत कराने मे शैक्षिक पर्यटन बहुत उपयोगी माध्यम है। इससे छात्र दूसरे स्थानों पर व्यापार की सम्भावनायें और जरूरतों को समझ पाते है। इससे अलग–अलग जगहों पर व्यापार की सम्भावना का अध्ययन करने का अवसर छात्रों को मिलता है। यहीं कारण है कि वाणिज्य के शिक्षण मे शैक्षिक पर्यटन एक आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। वाणिज्य के शिक्षण में प्रयोगशाला एवं पर्यटन के बढ़ते महत्व के कारण अब वाणिज्य का अध्ययन–अध्यापन नीरस विषय नहीं रहा बल्कि यह एक रोचक एवं जीवंत विषय बन गया है। वाणिज्य शिक्षण हेतु सुसज्जित कक्षा–कक्ष व प्रयोगशाला ने वाणिज्य विषय के प्रति छात्रों व अभिभावकों का नजरिया बदल दिया है। प्रयोगशाला के माध्यम से वाणिज्य के छात्र जहां कक्षा की सैद्धांतिक समस्याओं के समाधान पर प्रयोग करके सीखते हैं वहीं शैक्षिक पर्यटन द्वारा उन्हें विश्व की व्यापारिक दृश्य भूमि को आलोकित करके समझाने में सहायता मिलती है। यही कारण है कि वाणिज्य के शिक्षण में प्रयोगशाला व शैक्षिक पर्यटन का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

15.7 अभ्यास के प्रश्न

1. वाणिज्य प्रयोगशाला का क्या महत्व है।
2. वाणिज्य के शिक्षण में शैक्षिक पर्यटन की उपयोगिता बताइए।
3. वाणिज्य पर्यटन की योजना बनाते समय कौन–कौन सी बातें ध्यान में रखनी चाहिए?
4. वाणिज्य के शिक्षण हेतु व्याख्यान–कक्ष की साज–सज्जा कैसी होनी चाहिए?
6. वाणिज्य के शिक्षण में कंप्यूटर कक्ष की क्या महत्ता है।

15.8 चर्चा के बिंदु

1. शैक्षिक पर्यटन के महत्व पर चर्चा कीजिए।
2. वाणिज्य प्रयोगशाला की उपयोगिता पर चर्चा कीजिए।
3. शैक्षिक पर्यटन पर अपने अनुभव की चर्चा कीजिए।
4. वाणिज्य कक्षा–कक्ष की साज–सज्जा के विषय में चर्चा कीजिए।

5. वाणिज्य कक्षा–कक्ष को अधिगम हेतु अधिक समृद्ध वातावरण प्रदान करने हेतू किये जाने वाले उपायों पर चर्चा कीजिए।

6. वाणिज्य प्रयोगशाला का अधिकमत् उपयोग कैसे किया जा सकता है? चर्चा कीजिए।

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वाणिज्य प्रयोगशाला में प्रोजेक्टर, वीडियो कैमरा, कंप्यूटर, एल०सी०डी० व डी०वी०डी० प्लेयर, आवश्यक पुस्तक, लेखासामग्री, बैठने की व्यवस्था के साथ–साथ समुचित प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए।

2. वाणिज्य प्रयोगशाला के दो लाभ निम्नवत है–

   (क) वाणिज्य प्रयोगशाला में छात्रों को सैद्धांतिक ज्ञान पर प्रयोग करके सीखने का अवसर मिलता है।

   (ख) वाणिज्य प्रयोगशाला में छात्रों को व्यवसायिक समस्याओं को सुलझाने हेतु व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है।

3. वाणिज्य शिक्षण हेतु चार तरह के एक साथ संलग्न कक्षाकक्ष की आवश्यकता होती है।

4. व्यावसायिक यंत्र कक्षा–शिक्षण से सम्बन्धित सामग्रियों के भंडार के काम में आता है ।

5. वाणिज्य शिक्षण में पर्यटन से दो लाभ–

   (क) पर्यटन द्वारा पाठ्यचर्या के अनुभवों को समृद्ध बनाया जाता है।

   (ख) इसके माध्यम से छात्र वाणिज्य की वास्तविक परिस्थितियों को जान पाते हैं ।

6. वाणिज्य पर्यटन की योजना बनाते समय पर्यटन की अवधि, भ्रमण स्थल, संभावित व्यय, साधन, मार्ग व पर्यटन के उद्देश्यों का निर्धारण कर लेना चाहिए।

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. त्यागी, गुरूसरन दास (2012), ' वाणिज्य शिक्षण', अग्रवाल पॅब्लिकेशन आगरा।
2. कुलश्रेष्ठ, एस०पी० (2012), 'शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार', श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
3. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज (2017),' वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ– 250001
4. माथुर, एस0एस0, (1994),' शिक्षण कला,' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
5. शर्मा, बी0एल0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'वाणिज्य शिक्षण,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001
6. सिंह, आर0पी0 एवं मंसूरी, इम्तियाज, 'पेडागागी आफ स्कूल सब्जेक्ट कामर्स,' आर0लाल बुक डिपो, मेरठ– 370001

Notes